Presented

With best compliments to

Sethia Jain Library

By Bikaner

Messrs Surajmal Lakhani

In sweet memory of their father

Late Seth Gumanchandji Bhandari

Sagra (Marwar)

11th Nov. 1943

जैन-जगती और लेखक

मैं न कवि हूँ, न काव्यकला का पारखी, इसलिये जैन-जगती को कविता की मानी हुई कसौटियों पर कस कर उसका मूल्यांकन करना मेरे अधिकार से बाहर की बात है। पर अगर हृदय की रागात्मक वृत्तियों का कविता के साथ कोई सम्बन्ध है तो मैं कहूँगा कि 'जैन-जगती' में मुझे लेखक की हार्दिकता का काफी परिचय मिला है।

पुस्तक के नाम, शैली, छंद और विषय-प्रतिपादन से यह तो स्पष्ट ही है कि भारत के राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरणजी गुप्त की सुन्दर कृति 'भारत-भारती' से लेखक को पर्याप्त प्रेरणा मिली है। लेखक ने जैन-समाज के अतीत, वर्तमान और भविष्यत का जो चित्र अंकित किया है, उसमें कुछ ही स्थल हैं, जहाँ मैं लेखक की मनोभावना का समर्थन नहीं कर सकता। पर ऐसे स्थल बहुत ही कम हैं। लेखक जिसके प्रति और जो कुछ कहना चाहता है, उसमें वह काफी सफल हुआ है, ऐसा कहा जा सकता है। अगाध निद्रा में सुप्त पड़े हुए जैन-समाज को जागृत करने का, उसको नव चैतन्योदय का नव संदेश देने का, और जीवन के नये आदर्शों की प्रेरणा देने का लेखक का ध्येय उच्च है, इसमें मत-वैभिन्य की जरा भी गुंजाइश नहीं है। जिस तबियत से लेखक का हृदय जल रहा है, उसी को अनुभव करने के लिये 'जैन-जगती' में उसने सारे जैन-युवकों को आह्वान दिया है। उसका यह आह्वान सच्चा है, सजीव है और अभिनन्दनीय है। यह आग पूरी तरह सुलगी नहीं है, लेखक का ध्येय उसको प्रज्वलित करने का है जिससे समाज की प्रगति के मार्ग में रोड़े

[illegible]

जैन-जगती

अतीत खण्ड

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

मन में बड़े का अभिमान अभिमान क्या होता नहीं ?
जो है बुरा है जन्म, क्या मरना उसे पड़ता नहीं ?
यह विश्व वैभवशील है—हम जानते निश्चल हैं।
दलकर अनेकों झड़ होते—गिर गये हत्यान्त हैं॥ ९॥

संसार का उत्थान-विघटन सूर्य है—हम जानता।
डूबा हुआ अवलोक रवि को रोक क्या वह मानता ?
डूबा हुआ है आज जो वह कल निश्चय ही उगता।
दुर्दैव पर मन-मन्द को गिर से हुए कर उगता॥ १०॥

हा ! दीन दुख में मान-दिनकर अस्त तेरा हो गया !
जो आज तक तेरे गगन में गिर नहीं लेता गया।
क्यों आर्य ! अब तक सो रहे हो अग्निशैल-चयन में ?
परतन्त्र उनसे मे हुए वैभव हमारा हीन में॥ ११॥

कृत न होगा के नमों के प्रस्तावना आर्य हैं।
विद्या—वरण—वाणिज्य—कृषि आर्य हैं।
कब हुए वे देश दिखते आज उन में दीखते;
होते न यदि इनकी दया वे विवर आते दीखते ?॥ १२॥

दिन के दौरेश से जो हो रहा अभिलेख है;
वह तो हमारे भाग्य का एक अद्भुत लेख है।
नवयुग, यह, टारे तथा इस व्योम पर अधिकार का;
अवसर तक भी अब हमारे उन्नत का विस्तार का॥ १३॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

हा! नागभट-से नागभट-से वीर बालक अब कहाँ!
सौराष्ट्र! तेरे लाल ये अनमोल हीरे हैं कहाँ!

आमात्य आंबू विमल, उदयन, शान्तनु मंत्री तथा—
होते न यदि सौराष्ट्र में, सौराष्ट्र होता अन्यथा ॥ २४९ ॥

गुजरातपति नृप सिद्ध[१०१] के, सौराष्ट्रपति नृप भीम[१०२] के—
थे टालने वाले हमीं साम्राज्य की दृढ़ नींव के।
आमात्य वस्तुपाल[१०३] कहे क्या किस तरह के वीर थे!
इनके[१०४] सहोदर बन्धु भी आमात्य थे, रणधीर थे ॥२५०॥

इन सौरवंशी बन्धुओं के तेज में क्या शक्ति थी!
सुलतान आलम कुतुब[१०५] की चलती न कोई युक्ति थी।
सौराष्ट्रपति नृप भीम के यदि ये अनुज होते नहीं;
सौराष्ट्र के इतिहास, वर्णन दूसरे होते कहीं ॥ २५१ ॥

गुजरेश भैमराट[१०६] के थे नाम के अनुरूप ही;
थे बन्धु रामाराट[१०७] उनके दीखते तद्रूप ही।
श्रीधर्मसी[१०८] श्रीनेमसी[१०९] श्रीकृष्णदास धर्मसी[११०];
सब थे अनुज वर वीर भट हा! दर्द हो देने लगा! ॥२५२॥

हम दूर जाने की नहीं हैं आज से कुछ कह रहे;
दस वर्ष से पढ़ लीजिये जो दर्ज हो में कह रहे।
इतिहास राजस्थान का, क्या आप नहीं हैं जानते?
सब वर्ष हमसे आज भी भूपाल[१११] कह कर मानते ॥२५३॥

गाज हमारी मोहरों पर आज तक होती रही;
दस, पाँच, सादस, बीस बेटी-पुत्र हमें बहती रही;
निर्धन हमारे सामने पर सार्वभौमिक भूप था;
वे दिन दिवस थे आज के, यह दीन का नहिं रूप था ॥ २६९ ॥

पर शाह[illegible] हमने पाठ पौरह [illegible] नाम हो गये;
जिनके यही [illegible] 'पादशाही' [illegible] गये।
[illegible] हमारे नाम के पहले [illegible] पद शाह का;
[illegible] के पद 'शाह' के भी बाद [illegible] 'शाह' का ॥ २७० ॥

[illegible], [illegible] हमने हो गये;
[illegible] [illegible] [illegible] हो गये।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] ?
[illegible] [illegible] [illegible] ॥ २७१ ॥

[illegible] हैं [illegible], [illegible] [illegible] हैं,
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं।
[illegible] [illegible] [illegible] ! [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] ॥ २७२ ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ?
[illegible] [illegible] [illegible] ?
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] ॥ २७३ ॥

सन्तान

सन्तान सब गुणवान हैं, बलवान हैं, धीमान हैं;
माता पिता में भक्ति प के प्रति सम्मान है।
माता पिता का पुत्र से, अतिशय सुता से प्रेम है;
संतान के कल्याण में, माता-पिता का क्षेम है ॥ २८४ ॥

जब देव सदृश हो पिता, देवी स्वरूपा मातृ हो;
सन्तान उत्तम क्यों न हो, ऐसे सगुण जब पितृ हो।
पति पत्नि के गुणपुञ्ज का सन्तान होती योग है;
ये गुण्य-गुणक राशियों का गुणनफल है, योग है ॥ २८५ ॥

दाम्पत्य-जीवन—

सन्तान आज्ञापालिनी है, नारि आज्ञाकारिणी;
सब कार्य-प्राणाभृत्य है, समृद्धि है अनुसारिणी।
दाम्पत्य जीवन क्यों न हो फिर सौख्यकर उनका सदा;
निर्मल सरोवर पद्मयुत लगता न सुन्दर क्या सदा ? ॥२८६॥

कर्तव्याचरण—

हो कुक्कुट[२२९] का कूक इसके पूर्व ही सब जग गये;
जिनराज का करके स्मरण सब प्रति-क्रमण में लग गये।
आलोचना, पचखाण कर गुरुदेव वंदन हो गये;
यों धर्म-कृत्यों से निपट गृह-कार्यरत सब हो गये ॥ २८७ ॥

स्वाध्याय[२३०], पूजन, दान, संयम, तप तथा गुर्वर्चना;
कर्तव्य हैं ये नित्य के अरु हैं अतिथ्यभ्यर्थना।
ये देख कर बाधा विविध रुकते न चलती राह हैं;
तन-प्राण की, धन-ऐश की करते न ये परवाह हैं ॥ २८८ ॥

चिकित्सालय—

निःशुल्क होती है चिकित्सा, शुल्क कुछ भी है नहीं;
देवी मनुज, पशु आदि सब की है चिकित्सा हो रही।
धनि-गुप्त हमारा आज भी निःशुल्क औषध दे रहा;
यह भूत भारतवर्ष की कुछ गुप्त झलक झलक रहा ॥ २०६ ॥

अन्नदान—

है मान, पुर सारे सहोदर, प्रेममय व्यवहार है;
हर एक का पुर हो रहा सब के लिये पुर द्वार है।
सब के भरण-पोषण निमित्त वे कृषक करते काम हैं;
है अन्नदाता तक जिस गई, कुछ शेष तन पर चाम है ॥ २१० ॥

घर घेरव लाचार है, घर घेर एकी है सभी,
है आदर्श विमल, है शुद्ध अनभेदी सभी।
सब धर्म अपने घर रहे, नहिं भेद है, नहिं द्वेष है,
धर्मान्ध धूमधाम की दुर्गंध का नहिं लेश है ॥ २११ ॥

घर में परस्पर पति-पत्नी प्रेमपूर्ण हो रहे
दोनों सुख घर दोनों ही सदैव सब हैं देखते।
दोनों सुख घर मूर्ख की होती न दीनता कुछ है
नहिं पिता का भी पिता से सम्बन्ध होता कुछ है ॥ २१२ ॥

घर घर-पुर धन-धान्य-पूर्ण है, सदाचार-रत जनवृन्द है
भूखी कहिं है दर्शन, घर नहीं न दीनबन्धु है।
इनके न धन की दीन है, बहुते किये फिर मूल है
[illegible] ॥ २१३ ॥

औदार्य-चेता भूप हैं; दुष्काल भी पड़ते नहीं;
षष्ठांश कर से कर अधिक नहिं भूप लेते हैं कहीं।
कर भूप जितना ले रहे, सब व्यय प्रजा हित कर रहे;
अनिवार्य विद्या हो रही, गुरुकुल सभी थल चल रहे ॥ ३१४ ॥

देखो यहाँ होते नहीं यों घूँस के व्यापार हैं;
ग्रामीण जन पर आज-से होते न अत्याचार हैं।
नृप आप जाकर ग्राम में हैं पूछते, 'क्या हाल है'?
कैसा प्रजापति वह भला काटे न दुख तत्काल है ॥ ३१५ ॥

यों भ्रूण-हत्या, अपहरण देखो कहीं होते नहीं;
दुःशीलता की बात क्या! रतिचार तिल छूते नहीं।
हा! वृद्ध भारत! पुत्र तेरे जन्मते थे गुण भरे;
हा! हंत! अब तो प्रौढ़ भी हैं दीखते अवगुण भरे!! ॥ ३१६ ॥

तीर्थ-यात्रा—

अब अन्त में वर्णन तुम्हें हम तीर्थ-यात्रा का कहें;
फिर से सभी वातावरण संक्षेप में तुमको कहें।
धन-ऐश-वैभव-भाव का सब कुछ पता मिल जायगा;
कुछ उक्त में से होगया विस्मृत, नया हो जायगा ॥ ३१७ ॥

हे तीर्थ-यात्रा चीज क्या? श्री संघ फिर क्या हैं अहो!
जातीय सम्मेलन अहो! ये घट गये कब से कहो?
क्यों श्रमण, श्रावक उस तरह से आज मिलते हैं नहीं?
क्यों देश, जाति, सुधर्म पर सुविचार अब होते नहीं? ॥ ३१८ ॥

परिवार सह चेटक यदि जिन वीर की सेवा करें;
फिर आत्मजाएँ सप्त उनकी क्यों न जिनवर को वरें ?
उनकी यहाँ पर आत्मजाओं का न वर्णन हो सके;
यदि वर्ण अर्णव भर सके, यह वर्ण्य मुझ से हो सके ॥ ३३४ ॥

यह चन्द्रगुप्त नृपेन्द्र जो इतिहास में विख्यात है;
यश-कीर्ति जिनकी आज भी संसार में प्रख्यात है।
जिसको अधूरे विज्ञजन थे बौद्ध-धर्मी कह रहे;
विद्वान अब नृप चन्द्र को सब जैन हैं बतला रहे ॥ ३३५ ॥

वीतभय[३०९] साकेतपुर[३१०] के कुछ भवन खण्डित शेष हैं;
कुछ राजगृह[३११] चम्पापुरी[३१२] में खण्ड विगलित शेष हैं।
उज्जैन[३१३], मिथिला[३१४], पटन[३१५] के शिल-पत्र तो तुम देख लो;
वर्णन हमारा दे रही श्रावस्ति[३१६], इसको लेख लो ॥ ३३६ ॥

गिरनार[३१७], शत्रुञ्जय[३१८] कहो ये तीर्थ कब से हैं बने,
सम्मेत[३१९] गिरिवर का कहो वर्णन कहाँ तुमसे बने ?
क्या चीज है सरवर सुदर्शन[३२०] ? नाम शायद ही सुना
अर्थात् यों जिन धर्म भारतवर्ष में व्यापक बना ॥ ३३७ ॥

पंजाब, उत्कल, मध्यभारत, मगध, कौशल, अङ्ग में,
सौराष्ट्र, राजस्थान, काशी, दक्षिणारा वङ्ग में।
अर्थात् आर्यावर्त में, सब थल अनार्यावर्त में—
जिन धर्म प्रसरित हो चुका था कोण, आशा, वर्त में ॥ ३३८ ॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]

ये स्थान विग्रह नष्ट कर मत भेद को हम हर सकें—
जब काल में संभव नहीं, यह काल सार्थक कर सकें।
फिर आज की सरकार में मतभेद पोषित हो रहे;
ये धर्म-रत हो ! पतन कर मत राजाज्ञा हैं हो रहे ॥ ३४५ ॥

मतभेद व कलह—

मतभेद होता आदि से हर दौर जग में आ रहा,
पहले बताने की कला मत है नहीं मिलता रहा।
इसमें उतरने की कला हम जैनियों ने सीख ली,
पर हाय ! पढ़ने की कला नहीं दृष्टि भर भी लेख ली ॥ ३४६ ॥

जिन धर्म पहिले एक था, फिर मतभेद दुगने हो हुये,
फिर वे तिगुने ... चार अठगुने ... नामों सहित हुये।
अब तक हुये फिर द्वितीय मत दिखाई दे गया,
यह जैन कलह की अति ! हो मतभेद होकर गिर गया ॥ ३४७ ॥

मतभेद पर इसकी दशा में काल कोई कहने लगा !
जो था पुनः फिर हाल है, अब कोई पुनः रहने लगा !
कर्तव्य ... भोगभूमि ... दशा में मत अलग कहने लगा
कर्तव्य रत से पतन ... फिर अलग ही हो गया ॥ ३४८ ॥

मत भिन्न, कर्तव्य, मूढ़ दुनियाँ छोड़ कर आने लगा
है भिन्न इस पर अलग कर मत अलग फिर होने लगा
जब है कलह फिर देख ले, अवसर अलग कोई भिन्न मत
भिन्न हुये अवसर में पुनः पतन होने भिन्न मत ॥ ...

लड्डू कलह में तुम बताओ आज तक किसको मिले;
पद-त्राण के अतिरिक्त भाई! और दूजे क्या मिले।
अपशब्द, निंदावाद तो हा! हंत! मण्डनवाद है;
जब तक न मूलोच्छेद हो, फिर क्या जिनेश्वरवाद है!! ॥ ३५९ ॥

हा! ये दिगम्बर श्वेत अम्बर श्वानवत हैं लड़ रहे;
पद-त्राण पावन स्थान में इनमें परस्पर चल रहे।
हा! नाथ! यह क्या हो गया! निशिकर अमाकर हो गया!
वृद्धत्व में अनुभव हमारा भार हमको हो गया!! ॥ ३६० ॥

बिगड़ा न कुछ भी है अभी, बिगड़ा यदि हम सोच लें;
ऐसे न निःसृत प्राण हैं जो एक पद दुर्भर चलें।
यदि अब दशा ऐसी रही, तब तो हमारा अन्त है;
हा! हंत! हा! हा! अन्त! हा! हा! हंत! हा! हा! अन्त है॥३६१॥

जैन धर्म पर अत्याचार—

नृप[३३०] कल्कि के दुष्कृत्य[३३१] हम कुछ चाहते कहना नहीं;
कुछ पुष्यमित्र[३३२] महीप का व्यवहार भी कहना नहीं।
दुष्कृत्य इनके आज भी मुद्रित हृदय पर पायेंगे;
जिनको श्रवण करते हुये श्रुत आपके खुल जायेंगे॥ ३६२॥

पहिने हुये पद-त्राण तक ये शीष पर थे जा चढ़े;
करने हमें ये देश बाहर के लिये आगे बढ़े।
हमको गिराया अग्नि में, हमको डुबाया धार में,
न विचार था उस काल में, इस काल भी न विचार में॥ ३६३॥

मैं पूर्व हूँ बतला चुका, नव शौर्य-परिचय दे चुका;
था आत्म-बल कैसा हमारा, यह तुम्हें बतला चुका।
जब आत्म-बल से शत्रु को हम कर विजय पाते नहीं;
तब खड्ग के अतिरिक्त साधन दूसरा फिर था नहीं॥ ३६६॥

ऐसा हमारा धर्म था, वैसा हमारा आज है;
यह मानते लज्जित नहीं—वैसे नहीं हम आज हैं।
हम पूछते हैं आपसे, क्या आप वैसे हैं अभी?
फिर दोष सब हम पर धरो, आती तुम्हें नहीं शर्म भी॥३७०॥

हम पर तो आगे बड़ा झगड़ा न पड़ता है हमें;
विपक्ष पक्ष पूर्व का उद्भूत खोला है हमें।
यह क्या, किसी का दोष हो, यह भूत भारत हो चुका;
हम-आपसे का नाश हो यदि, स्वर्ग फिर भी हो चुका॥३७१॥

दर्शन और वैरवर्द्ध—

है वर्द्ध आगे आज भी, निर्दोष पाते हो सभी;
हा! वर्द्ध विहार हो गये, सब वर्द्ध आदर है अभी।
उन पूर्वजों ने वर्द्धवल्ल पर कठोर भी करी,
जिस लेखिनी ने पक्ष उनको सत्य से वंचित करी॥ ३७२॥

हतोत्साह ऐसा हो गये, पर प्रकृति बहलवल्ल,
पाते जिसर फिर हो, पर पूर्व काल उदाल।
लगर गये हो प्रथम हम, पर आज हम बलवान;
दुनियाँ किसने भी करी नहीं मुझ जिस बलवान॥ ३७३॥

किस भाँति छुटकारा हो इस भाँति मैं वे जानते;
नरजाति के प्रति बन्धु हो जन वे मनोहर जानते।
अब आत्मगौरव की कहो! रक्षा वे मनोहर मन में;
उनमें परस्पर प्रेम था, आत्मावलम्बित्व मन में ॥ ३७६ ॥

इन वर्ष, आत्मा, देह की किसने कहो रक्षा करी;
किसने मनोहर भाँति से लेखी समस्त हुए वरी।
इस वर्ष की की नन्दिसूत्र[३३४] के था प्रथम जग में विदित;
यह था प्रथम, अब कौन है, यह अन्त वरदेव्य विदित ॥ ३७७ ॥

दण्डकवृत्त—

दशवैकालिक था पढ़े बैठा रहा इस देश में;
देखा कि उनका पोत था बुड़ता है यह देश में।
था देख किन्तु, था अनुभव कर यह हमारे वर्ग का;
यह कोलाहल पड़ता नहीं सुनता बिना दुर्वर्ग का ॥ ३७८ ॥

दुष्कर्म से दशवैकालिक हा! अन्त में अन्त रहे;
वे वीर, धीर, सुधीर, वैदिकों का थे हरण करते रहे।
दुष्कर है यह किन्तु है इतना कहे लगे
अपने न हो इतना भी वैदिक है करते लगे ॥ ३७९ ॥

यह हाल था उनके लगे रहते नहीं हो दूर है,
निकले हुओं के साथ के निकले न यह हा! क्रूर है।
हा! दूसरे रिपु-रोक का यह हाल देखा न था,
नाकूर था, नाकूर था, हमने उसे देखा न था ॥ ३८० ॥

है कोर्ट मुनसिफ खुल रहे, होता जहाँ पर न्याय है;
तुम लार्ड-परिषद्[११७] तक बढ़ो, यदि हो गया अन्याय है।
हम लार्ड-परिषद्-कोर्ट का हम नाम खिलवा ले चुके!
सम्मेन[११८]-शेखर के लिये हम हैं यहाँ तक बढ़ चुके ॥ ३८८ ॥

है पास में पैसा अगर, तब काम कुछ कर कर सकोगे;
थोड़े दुखे पर बहुत के सेवार्थ तन उत्सर्ग।
रखते नहीं हम हैं हमें हमारी कुछ भी चिन्ता नहीं;
कर हम बहुत के लाभ के कुछ [illegible] नहीं ॥ ३८९ ॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]

वर्तमान खण्ड

—०:*:०—

गाती रही तू मूल अब तक लेखनी उत्साह भर,
रोया न तुझसे जायगा अब आज का दिन दाहकर!
निःशक्त हैं, निःचेष्ट हैं, नहिं नाड़ियों में रक्त है,
अब श्वास भी रुकने लगी, अंतिम हमारा वक्त है !!! ॥ १ ॥

क्या बन्धुओ ! हमको कहाने का मनुज अधिकार है ?
दर दर हमें दुत्कार है ! धिक् ! धिक् ! हमें धिक्कार है !
कटुतर लगेंगे आपको ये वाक्य हैं जो कह रहा,
पर क्या करूँ ? लाचार हूँ, मेरा हृदय नहीं रह रहा ॥ २ ॥

दयनीय हा ! इस दुर्दशा का है विभु ! कहा छोर है ?
इस ओर भी हम हैं नहीं, नहिं नाथ ! दूजी ओर है।
हमने किसीकी कुछ है हमसे बड़ा अपकार है,
हैं लोग ऐसे पड़ रहे, जिनका न कुछ उपचार है ॥ ३ ॥

हैं अज्ञता-तमसा-घना सम्पूर्ण हमें घेरे हुये
हैं स्वयं ! हम दरिद्रतिमिर के कक्ष में गेरे हुये।
लाचार हो, लाचार हो, रीत अपनी-सहवास हो,
इस ठौर पर कल्याण की क्या नाम ! कोई आस हो ॥ ४ ॥

गुर्जर व मालव देश के हम शाह थे, सरदार थे;
सौराष्ट्र, राजस्थान के आमात्य थे, भूदार थे।
ऐसा पतन तो शत्रु का भी नाथ! हा! करना नहीं;
इससे भली तो मृत्यु है, जिसमें न है लज्जा कहीं॥ ५॥

श्रीमंत होने मात्र से क्या अवपतन रुकता कहीं;
हैं किस नशे में भूलते, हमसे न कम गणिका कहीं।
कितनी हमारे पास में दौलत जमा है देख लूँ;
किस श्रेणि के फिर योग्य हैं हम, श्रेणि वह भी लेख लूँ॥ ६॥

हम शाह हैं या चोर हैं, हम हैं मनुज या हैं दनुज;
हम नारि हैं या हैं पुरुष! अत्यंज तथा या हैं अनुज।
हिंसक तथा या जैन हैं, या नारि-नर भी हैं नहीं,
क्यों थी हमारे कार्य तो नर-नारि सम खलु हैं नहीं॥ ७॥

अविद्या

क्यों मूढ़ ऐसे पड़ गये? क्यों अवनुन्नो से टक गये?
क्यों मन-वचन-सरविद पर पाले शिशिर के पड़ गये?
निज जाति, धन, जन, धर्मका क्यों ह्रास दिन-दिन हो रहा?
हम देखते चित क्यों नहीं? क्या रोग विषुवर! हो रहा?॥ ८॥

हममें विषय का जोर क्यों? हममें बढ़ा व्यभिचार क्यों?
उन्मूल हमको कर रहा यह कन्द मद्यापार क्यों?
पातक प्रमादे, इंद्रियों के घोर हम हैं दास क्यों?
हम काम करने ही लिये हत्कीर्ण रखते दास क्यों?॥ ९॥

वेश-भूषा

निज वेश-भूषा छोड़ना यह देश का अपमान है;
क्या दूसरों की नकल में ही रह गया सम्मान है।
जो जाति खलु ऐसा करे, वह जाति जीवित ही नहीं;
यदि चढ़ गया रंग लाल तो फिर श्वेतपन है ही नहीं।।२५।।

इस वृद्ध भारतवर्ष का यह वृद्ध भूषा-वेश है;
चारित्र-दर्शन-ज्ञान का यह पूत! पार्थिव वेश है।
हम दूसरों की कर नकल अब सिद्ध ऐसा कर रहे—
जन्मे नहीं हम पूर्व थे, हम जन्म अब हैं धर रहे।। २६ ।।

जलवायु, कर्माचार के अनुसार होता भेद है;
प्रतिकूल जिनके वेश हैं, खलु पतित वे ही देश हैं।
हम वेश-भूषा में निहित नय रस तुम्हें मिल जायेंगे;
साहित्य-कौशल-कर्म का हमको जनक बतलायेंगे।। २७ ।।

"जब तक न भाषा-भेद का अभिरूप बदला जायगा;
तब तक न भारत में हमारा राज्य उनने पायगा।"
ये वाक्य किनको याद हैं? किनने कहो, कब ये कहे?
मंतव्य के अनुसार अब तक कार्य वे करते रहे!।। २८ ।।

हम छोड़ करके वेश-भूषा देश लज्जित कर रहे;
अपमान कर हम पूर्वजों का स्वाद कुछ निज कर रहे!
पूर्वज हमारे स्वर्ग से आकर अगर देखें हमें;
मैं सत्य कहता हूँ सखे! परिचय नहीं सकते हमें ।। २९ ।।

फैले हुये अपकार के ये दुष्ट दिग्गज हैं;
ये हैं मिथ्यात्व आदि के—इनके बुरे व्यवहार हैं।
अज्ञानुवर्ती आदि से हम अब तक इनके रहे;
कहना पड़ेगा आज तक अज्ञान तट पे रहे ॥ ४२ ॥

श्रीमन्त

श्रीमन्त हो फिर क्या करो—पैसा न क्या रे! कर सके;
तुम दीनहीनों को कहो, पर कौन तुमको कह सके।
कुछ एक को तो बात में भी हैं प्रिया मृगनयनिया;
हम तुम्हारे हो गई विरहीनी दीवनिया !! ॥ ४३ ॥

श्रीमन्त हो, रक्षक हो, क्या तब देखते हो;
अवकाश भी तुमको कहाँ! जो आदि का भी ध्यान हो।
इस आज की हा! दुर्दशा के मूल कारण हो तुम्हीं;
तुम चोर हो, गुण चोर हो, अन्याय-रत हो तुम्हीं !! ॥ ४४ ॥

देवत्व खोये हुये तुमको न कोई त्राण है;
तुम स्वतः को भी खो सके वह कौन-सा तुम्हारा है!
अनैतिक कन्या-हरण तुम हो! कन्या-गुरु हो;
धन के सहारे तुम हुये, हो तुम मनुज हो! कहो !! ॥ ४५ ॥

फैले हुये अपकार के हो! तुम, उन्नी हो तुम्हीं;
अनमेल-वृद्धिक प्रथा के भी हम! जन्म हो तुम्हीं।
बहु पाणिग्रहण भी तुम्हारा हम! क्यों करते हैं;
ये रो रही विधवा हमारे, पर न तुमको डरते हैं !! ॥ ४६ ॥

इनके भरोसे बैठना अब तो भयंकर भूल है;
क्या खेद देंगे उड़ हमारी !—आप ये निर्मूल हैं।
बेड़ा हमारा पार क्या वेही करेंगे ? सच कहो;
हा ! हंत ! आया अंत है !—ऐसा नहीं तुम कुछ कहो ॥ ६५ ॥

इनके वहाँ पर मान है श्रीमन्त बिन होता नहीं;
धनहीन भाई को यहाँ दुत्कार है, न्योता नहीं।
हम किस तरह से हाय ! इनसे तुम कहो आशा करें;
दुत्कार ठोकर द्वार पर इनके सदा खाया करें ? ॥ ६६ ॥

श्रीमन्त की संतान

यह कौन है ? नहिं जानते ! श्रीमंत की संतान है;
नङ्गे, निरक्षर, मूर्ख हैं, पाषाण, पशु, नादान हैं।
सीखा न अक्षर बाप ने, सीखा न ये हैं चाहते;
मर्याद ये भी वंश की तोड़ा नहीं हैं चाहते !! ॥ ६७ ॥

आलस्य, विषयानंद के ये दुर्व्यसन के धाम हैं,
बढ़कर पिता से पुत्र नहिं—होता न उनमें नाम है।
ये अर्ध निद्रा में पड़े हैं, नाक-खुर्रे ले रहे;
बाना पड़ी विमुखा उधर, ठेके इधर ये दे रहे !! ॥ ६८ ॥

ये बोलने पर पत्नि के डरते दिना नहिं बोलते;
उसको किये मृतप्राय बिन सीधी कभी नहिं छोड़ते !
हा ! हंत ! मानव पत्नि है, हा ! बहन के ये यार हैं;
ये भी विचारें क्या करें ! रवि-भाव से लाचार हैं ॥ ६९ ॥

[illegible] आदर्श के दास गुरुवर! आप तो [illegible] हो गये।
[illegible] त्याग-संयम-शील-मंडित [illegible] अनगार हो गये।
[illegible] महाना [illegible] परम्परा आज गुरुवर धाम है!
[illegible] गुरु आपका अब धाम है!! ॥ १५ ॥

अब साधु तुम हो नाम के, [illegible] साधु अब तुम हो नहीं।
अब साधु-गुण तो साधु में हैं! [illegible] तक [illegible] नहीं।
तुम क्रोध व अहंकार हो, तुम मान में अहंकार हो!
[illegible] माया-मद [illegible], लोभ में [illegible] हो!! ॥ १६ ॥

[illegible] हो, [illegible] हो, तुम [illegible] हो
[illegible] हो! ॥ १७ ॥

[illegible] साधु [illegible]
[illegible]—[illegible]
[illegible] साधु [illegible]
[illegible] ॥ १८ ॥

[illegible]—[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥ १९ ॥

लड़ने लगो जब तुम परस्पर वह सदा ही पेल है !
जो-दण्ड हैं डण्डे तुम्हारे, पात्र हाथ में लेख है !
वर-पाद भी हम बाल में देते गदा यह काम है !
दुर्द्वन्द्व की तो क्या कहूँ—यह तो कला का काम है !! ॥ १०५ ॥

संदम-प्रथा इन नारियों का यह पतन ! हा ! हन्त ! हा !
वह वर पहले थी मोह थी जो, तपन में भी है न हा !!
कौशेय को इस भाँति से विभु ! क्या करना था नहीं !
नग्नत्व का ऐश्वर्य में मैं भूल हरना था नहीं !! ॥ १०६ ॥

श्रीकृष्ण-चर्चा

श्रीकृष्ण, दर्शन जिनका अधिक सम्राट से भी मान था;
किस भाँति कहकर दे दिया वर्ति हाँ का सम्मान था।
वह कन्त देते फिर गये दे—दान कुछ है नहीं !
वह देव-कायर है सभी, वह रण-मंडन है नहीं !! ॥ १०७ ॥

अनवद्य क्या दे मूर्ख है, वह घोर विस्मरण है !
अभी, अभी है, अनाथ नर कल हुए अन्य है !
वह देव, मोहन्द्र के मंदिर-पद हा ! वह गया
वह देव नीलाम्बर दे इस वर विलम्ब वह गया !! ॥ १०८ ॥

कुरुक्षेत्र

दे कन्त कुरुक्षेत्र वह हमारे देख, विभु ! हो गये !
हो क्यों न विभु ! देख विस्तृत वह दे हो गये !
दे वह गये वह कौन है, स्वामी, स्वामी हो गये !
कर्तव्य कुरुक्षेत्र दे कहे, वह मूल देखो हो गये !! ॥ १०९ ॥

पाश्चात्य मृदंग सीखकर हम तबलची कहला रहे;
हर वर्ष बी० ए०, एम० ए० पढ़ते हुए हैं जा रहे।
यदि हो न बी० ए०, एम० ए० रक्खी कहाँ हैं नौकरी!
डिगरी बिना हम निर्धनों को है कहाँ पर छोकरी!! ॥ १४५ ॥

प्राचीन प्राकृत, देव भाषा सीखते हैं हम नहीं;
इनके सिखाने की व्यवस्था है न अब सम्यक् कहीं।
फिर देश के प्रति तुम कहो अनुराग कैसे जम सके?
दासत्व के कैसे कहो ये भाव उर से उड़ सके? ॥ १४६ ॥

जापान, लण्डन, फ्रांस में शिक्षार्थ हम हैं जा रहे;
आते हुये दो एक लेडी साथ में ले आ रहे।
शिक्षा-प्रिया के साथ में लेडी-प्रिया भी मिल गई;
हम मैन इङ्गलिश बन गये बस मुनसफी अब मिल गई! ॥१४७॥

जो पा चुके शिक्षा यहाँ, उनको बुभुक्षा मिल गई!
हा! भाग्य उनके खुल गये, यदि रोटियाँ दो मिल गईं!
नीचा किये शिर रात दिन वे काम, श्रम करते रहें;
फिर भी बिचारे स्वामियों के झाड़ते जूते रहे॥ १४८ ॥

आराम में बस प्रथम नम्बर एक ऐडवोकेट है;
दो बन्धु आपस में लड़ा वे भर रहे पाकेट हैं।
ये भी बिचारे क्या करें, इसमें न इनके दोष हैं;
जैसी इन्हें शिक्षा मिली, वैसा करें—निर्दोष हैं॥ १४९ ॥

[illegible], [illegible] के सिवा होती न शिक्षा है यहाँ !
बस साम्प्रदायिक सैन्य ही तैयार होता है यहाँ !
चटशाल, छात्रावास, गुरुकुल फूट के सब बीज हैं !
इनके बदौलत आज रे ! हा ! हम अकिंचन चीज हैं !! ॥ १५५ ॥

आश्चर्य क्या अतिचार का शिक्षण यहाँ संभव मिले !
हा ! क्यों न ऐसे गुरुकुलों में सृष्टि-शिक्षण पर मिलें !
शिक्षक गणो ! तुम धन्य हो; हे संचियो ! तुम धन्य हो !
निर्दोष बच्चों के अहो ! माता-पिता ! तुम धन्य हो ! ॥ १५६ ॥

बालक यहाँ सब मूर्ख हैं, आता न अक्षर एक हा !
यदि आ गये—मर जायँगे—देंगे न जाने टेक हा !
इनमें बड़ी पर पेटुओं भोले मुटे मिल जायँगे !
विद्यालय देवर कुछ गण इनको अहर्निश रमायँगे !! ॥ १५७ ॥

विद्यालयन आये दिवस हर रोज मुकदमे जा रहे;
फिर बैठ जाते पेनलों, वे दीप बुझते जा रहे !
यह जैन गुरुकुल मारवाड़ी का बंद हा ! कैसे हुआ ?
इसको न भी कोई बचा यह अन्त अति कैसे हुआ ? ॥ १५८ ॥

[illegible] इनमें [illegible], हे [illegible] !
हा ! वे न विद्यालय हैं, हैं वे [illegible] !
[illegible]
[illegible] हा ! [illegible] ॥ १५९ ॥

शिक्षा न दीक्षा है यहाँ, आलस्यता उन्माद है;
अपालर्य, धींगाधींगार है, स्वच्छंदता, अपवाद है!
कितनेक शिक्षण भवन हैं? जो गर्वपूर्वक कह सकें—
हम धर्म सेवी भक्त इनके देश को हैं कर सकें॥ १३०॥

तुमको हमारे गुरुकुलों में यह नयापन पायगा,
बस जैन बालक के सिवा बालक न दूजा पायगा!
नहिं जाति के, नहिं धर्म के, नहिं देश के ये काम के,
ये रक्त-शोषक हाट हैं अध्यापकों के काम के!॥ १३१॥

आदर्श, पंडित, योग्य शिक्षक यदि कहीं मिल जायगा,
या वह सकेगा वह नहीं, या वह निराशा पायगा।
वाणिज्य से ये घर बनाते हाय! हैं 'धनलालसी'
षड्यंत्र ऐसे जैन-शिक्षणालय में नित पायेंगे'॥ १३२॥

विद्वान्

हम विज्ञ आदर्श के नहीं, विज्ञान संस्कृति के नहीं!
विद्वान आकृष्ट के नहीं, हम विज्ञ हिन्दी के नहीं!
हम में न कोई [illegible] 'अधिकोत्तम' है कौन है!
[illegible] 'आकाश से हाथ [illegible]'॥ १३३॥

[illegible]

अभिप्राय मेरा यह नहीं—ऐसा न होना चाहिए;
व्याख्यानदाता बस प्रयत्न आदर्श होना चाहिए।
अभिव्यक्त करने की कला चाहे भले भरपूर हो;
वह क्या करेगा हित किसी का, त्याग जिससे दूर हो ॥ १७५ ॥

संगीतज्ञ

संगीत ज्ञाता आज गायक रंडियों-से रह गये !
गायन सभी हा ! ईश के—गायन मदन के बन गये !
सुनकर उन्हें अब भावना विभु-भक्ति की जगती नहीं !
कामाग्नि उठती भड़क है, मन-आग हा ! बुझती नहीं !!! ॥ १७६ ॥

गायक रिझाने ईश को अब गान हैं गाते नहीं !
ये भक्ति-भावों को जगाने गान हा ! गाते नहीं !
श्रीमन्त इनके ईश हैं ! उनको रिझाना है इन्हें !
दुर्वासना मनमत्थ को उनको जगाना है इन्हें !!! ॥ १७७ ॥

संगीत अब बाजार है, हा ! शक्ति हो तो [illegible]
हे गायको ! तुम देख ग्राहक गान निज [illegible]
संगीत अब हा ! रह गये सामान [illegible]
कविता कवीश्वर कर रहे अनुकूल [illegible] ! ॥ १७८ ॥

मृत को जिलाने की अहो ! [illegible]
हा ! गायकों के कण्ठ में [illegible]
वह फेर में पड़ पेट के [illegible]
महफिल सजाने को [illegible] !! ॥ १७९ ॥

साहित्य-प्रेम

साहित्यिकों का भाव था [illegible] क्या भला होने लगा
दो एक ही उनमें हमारा अब [illegible] मानने लगा
वे भी अगर होते [illegible] शोध [illegible] मतान था !
जिनवर्ग कोई काल में हो ! एक कोविद [illegible] था ! ॥ १८२ ॥

साहित्य का आनन्द हमको [illegible] में हो [illegible] गया !
हा ! नव सृजन आदि [illegible] का अब [illegible] में [illegible] गया
विद्वान कोई हाट पर यदि [illegible] में आ [illegible]
दुत्कार के वह साथ में [illegible] [illegible] ॥ १८३ ॥

ऐसी निरक्षर जाति में विद्वान [illegible] [illegible]
साहित्य-दुर्गम-शृङ्ग पर हो [illegible] [illegible]
लिखना हमें चित्र नाम का पूरा अहा ! [illegible]
साहित्य में फिर प्रेम करना किस तरह आता [illegible] ॥

साहित्य जीवन-मूल है, साहित्य जीवन-प्राण है
साहित्य युग का चित्र है, साहित्य युग का त्राण है
साहित्य ही सर्वस्व है, साहित्य सदपथ इष्ट है
साहित्य जिसका है नहीं, जीवन उसीका निष्ट है ॥ १८५ ॥

साहित्य जैसी वस्तु पर जिसकी न ऐसी दृष्टि हो,
तेरा अंग—रस पर हुई जब [illegible] की [illegible] दृष्टि हो।
साहित्य जैसी [illegible] का भी क्या अनादर योग्य है ?
हे बन्धुओ ! अब क्या कहूँ जिसका न अक्षर योग्य है !!! ॥ १८६ ॥

प्रतिकार संकट का नहीं करना सिखाते हैं कहीं,
जब तक न हो पूरा पतन विश्राम इनको है नहीं!
कवि लेखको! तुम धन्य हो, तुम कर्म अच्छा कर रहे!
अवगुण सिखा कर फिर हमें गरने को तत्पर—च्युत रहे ॥२००॥

आदर्श नर अरु नारि के जीवन लिखे जाते नहीं!
आख्यायिकोपन्यास के ये अब विषय होते नहीं!
नहिं शौर्य के, नहिं धर्म के हमको पढ़ाते पाठ हैं!
हा! आधुनिक साहित्य के तो और ही कुछ ठाट है!! ॥२०१॥

शुचि दान, संयम, शील के, तप ज्ञान, ब्रह्माचार के—
उल्लेख लेखक क्यों करें अब आज धर्माचार के
कुल्टा, कुचाली-सा मजा इनमें न है इनको कहीं!
आनन्द जो रति-राम में वैराग्य में इनको नहीं! ॥२०२॥

सभायें

इतनी सभायें हैं हमारी, और की जितनी नहीं
क्यों ये कलह बढ़ते रहें, ये क्यों सदा खुलती रहीं!
लड़ना, जहाँ भिड़ना पड़े, अनिवार्य ये होती वहीं,
करने सुधारा जाति का खोली न हैं जाती कहीं! ॥२०३॥

इतिहास लेकर आप कोई भी सभा का देख लें,
उनके किये में जो यदि अणु मात्र हित भी लेख लें—
'मैं हार निज जीवन गया,' मुख्तन हमारा हो गया!
हा! गाँठ का तो धन गया, घर में बखेड़ा हो गया!! ॥२०४॥

ज्यों अपनी तलवार का सिर कट न सकता वार है;
ठोकर लगे तो सिर लगे पद—रक्षा दुर्वार है।
जिनको सताएँ क्रूर रहीं—वनिताओं-बालकादि हैं;
हम नेत्रहीनों के लिये वे हाय! गहरे खड्ड हैं॥ २०५॥

करना सुधारा है नहीं, इनके दुखड़े हाय में!
करने जिसे हो एक के दो, हैं उसी के साथ में!
प्रत्याघात होता है जिसे, अपना जिसे धन चाहिए
निज आँखों सुविधा सभी उसके वहीं जो चाहिए॥ २०६॥

मण्डल

घर घरटों का काम तो भोजन बाकी रह गया;
वर्तन, सेज, धर्म सब जूठे उठाना रह गया।
भर जाति में हो संगठन वे शेष इनके हैं कहीं!
है प्रकृत जिनमें नहीं, उनमें भला कैसे है कहीं॥ २०७॥

स्त्रीजाति व उसकी दुर्दशा

हे मातः! भगिनि! कन्यिके! जननिके! सिद्धेश्वरी!
होगी न उनसे क्या कहीं! वह वहाँ मनोहरा!
देती रहो क्या हो नहीं! तुम कर रहे की दंड हो,
इस कारण ही कर तुम देती मरण के दंड हो॥ २०८॥

तुम में न वे दीपक हैं, तुम्हें न कोई दर्द है!
मूर्ख कर रहा तुम्हारा हो पतन कर दर्द है!
दुःखीदिन, दुःखीरात हैं न हैं कोई कष्ट हो!
दुःखीदिशाएँ, दुःखीदिशाएँ, दुःखीदिशा तुम कष्ट हो!॥ २०९॥

हा ! आज तुममें वंश की शोभा न बढ़ती है कहीं
नर-रत्न तुम अब दे सको—वह शक्ति तुम में है नहीं
वंध्या सभी तुम हो गई—यह बात भी जचती नहीं,
संतान की उत्पत्ति में लांछन लगा उसका—महा ॥ २१० ॥

शीला, सुशीला सुन्दरी मनरंजना न अब तुम रह गई
हा ! माधुर्य तो मर गया तुम कर्कशायें बन गई
उजड़े भवन का आज तुम प्रासाद बन सकती नहीं
टूटे हुए तुम प्रेम-बंधन गांठ फिर सकती नहीं ॥ २११ ॥

लक्ष्मी कहाने योग्य थी ! अब हो नहीं तुम रह गई
सम्पन्न करने की तुम्हारी शक्ति सब गल गई
विष-कूट के बोना तुम्हारा बीज है अब काम है
वामा तुम्हें जग कह रहा—वामा गरल का नाम है ॥ २१२ ॥

निर्बुद्धिपन अरु नारि-हठ नारी ! तुम्हारा घर है
नव वेष भक्तिन-सा तुम्हारा आज नारी लेश है
मंदहृदता, चातुर्यता नारी ! न तुममें दामिनी !
सब भाँति से री ! सच कहूँ—कुछ हमें हो दामिनी !! ॥ २१३ ॥

तुम शील भूषण भूधर हो ! नेह भूषण से करो !
प्रागेश अपना छोड़ कर तुम स्नेह दूजे से करो !
धिक्कार तुमको आज है, तुम डूब पानी में मरो !
है अग्नि रहती घर में अनल, तुम क्यों न अग्नि उसमें मरो ॥ २१४ ॥

[illegible] भी तुम्हें [illegible] आता नहीं !
[illegible] तुम्हारी क्यों [illegible], तुम साधु हो माता नहीं !
हे नाथ ! माता इस तरह मानव यदि होने लगे;
[illegible] होने किस तरह सुरकन्न फिर होने लगे ॥ २१५ ॥

नर का नारी पर अत्याचार

नर ! [illegible] के इस [illegible] के [illegible] हो;
तुम [illegible] नारियों पर [illegible] ! [illegible] हो।
[illegible] इस [illegible] ! [illegible] !
[illegible] के लिये [illegible] फिर [illegible] !! ॥ २१६ ॥

[illegible] है [illegible], [illegible] है [illegible],
है [illegible] [illegible], [illegible] है [illegible],
[illegible] [illegible] [illegible] !
[illegible] [illegible] ! ॥ २१७ ॥

[illegible] !
[illegible] !
[illegible] !
[illegible] ॥ २१८ ॥

[illegible] !
[illegible] !
[illegible] !
[illegible] ॥ २१९ ॥

[illegible]
अपमान अरुचि [illegible]
सम्मान नाम [illegible]
[illegible] ॥ [illegible] ॥

विदुषी बनाने [illegible]
इनके पतन में [illegible]
तुम ही सुता [illegible]
तुम पितृ होकर [illegible] ॥

व्यापार

कौशल कला व्यापार की [illegible]
मस्तिष्क में हम क्या [illegible]
हा ! देश निर्धन हो रहा, हा [illegible]
सम्मान पाकर हाय ! हम-सा [illegible]

अब तो न [illegible] है, अब तो न [illegible]
सरकार [illegible] है, पर मैं न [illegible]
व्यापार [illegible] का [illegible]
व्यापार [illegible] हा ! व्यापार [illegible] का [illegible]

व्यापार मुद्रा, रत्न का अब [illegible] की बात है
चूना-कली में भी नहीं [illegible] हमारी बात है
[illegible] ! [illegible] हम [illegible] !
[illegible] ॥ [illegible] ॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]

मुझको तुम्हारी इन नसों में बल नहीं है दीखता;
क्या अंत-घड़ियाँ आ गई हैं !—दम निकलता दीखता !
इस मरण से होगी नहीं चिन्ता मुझे किंचित कहीं;
क्या लाभ है उस देह से, है प्राण उसमें जब नहीं ? ॥ २३५ ॥

पर पूर्वजों के नाम पर कालिख कहो क्यों पोत दी ?
कौस्तुभ-मणी को हाय ! तुमने पंक में क्यों छोड़ दी ?
जीना जिसे—मरना उसे, मरना जिसे—जीना उसे;
अवध्वस्त होकर जो मरे, दुर्नीत है मरना उसे ॥ २३६ ॥

कायर तुम्हें बकाल, बणिया आज जग है कह रहा !
कुछ बोलने के भी लिये तो बल नहीं है मिल रहा !
तुम में न अब वह तेज है, नहिं शक्ति है असिधार में !
नारी सतायी जा रही है आपकी गृहद्वार में !! ॥ २३७ ॥

नहिं देश में, नहिं राज्य में कुछ पूछ भी है आपको !
हा ! जिधर देखो मिल रही लानत तुम्हें अनमाप की !
तुम चोर गुण्डों के लिये हा ! आज घर की चीज हो !
वे घुस घरों में मौज करने-मौज की तुम चीज हो ! ॥ २३८ ॥

तुमको अहिंसा-तत्त्व ने कायर किया यह झूठ है;
इसको क्षमा कहना तुम्हारा भी हलाहल झूठ है।
इतिहास तुमको पूर्वजों का क्या नहीं कुछ याद है ?
बस आततायी पर चलाना वार—जिन्दाबाद है ॥ २३९ ॥

[illegible] घोर भागाहाहा हा! देश-सेवी हैं नहीं;
बदला हमारा रक्त है या रक्त हम में है नहीं!
हमको हमारे स्वार्थ का चिन्तन प्रथम रहता सदा;
हम देखते हा! क्यों नहीं आई हुई घर आपदा !!! ॥ २४५ ॥

हिन्दू हमें कहना न, हम हिन्दू भला कब थे हुये!
होकर निशानी हिन्द के हैं हिंद से बदले हुये!
जिनधर्म तुम हो मानते, इस हेतु भाई! जैन हो;
हिन्दू तुम्हारी जाति है, तुम हिन्दुओं में जैन हो ॥ २४६ ॥

मर्यादा भावों से भला जिस जाति का मन है नहीं;
उस जाति का तो रक्षण में उद्धार सम्भव है नहीं।
जो देशवासी बन्धुओं के रक्षण पर रोता नहीं;
समझे हृदय से सच वही मानवपना पाया नहीं ॥ २४७ ॥

बौलियायता

बौलियायता [illegible] आदत्त दर्शनों में रह गया!
[illegible] और [illegible] हो के रह गया!
[illegible] हो! [illegible] तुम [illegible] हो!
[illegible] में [illegible], [illegible] पर [illegible] हो! ॥ २४८ ॥

[illegible] तुम [illegible], [illegible],
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हो [illegible]!
[illegible] [illegible] हो [illegible], [illegible] [illegible] हो [illegible]! ॥ २४९ ॥

...

जब ब्रह्मव्रत हममें नहीं, व्यायाम भी करते नहीं!
फिर रोग, तस्कर, दुष्ट के क्यों दाँव चल सकते नहीं?
हमसे किसी को भय नहीं, हमको डराते हैं सभी!
धनमाल के अतिरिक्त राना भी चुराते हैं कभी!!! ॥ २५५ ॥

ऐसा पतन हे नाथ! करना योग्य तुमको था नहीं!
हर भाँति से यों निःस्व करना उचित हमको था नहीं!
होगा कहाँ पर छोर!—अब तो हे विभो! बतलाइये;
अब तो अबल हैं भाँति सब हम!—आश तो दिखलाइये!!॥२५६॥

धर्म-निष्ठा

ये हाय! कैसे जैन हैं, घट में न है इनके दया!
सिद्धान्त इनके हैं दयामय, हाय! फिर भी ये हया!
बाहर सदाशय भाव हैं, बाहर दयामय भाव हैं;
अवसर पड़े तुम देखना भीतर कि कैसे दाँव हैं! ॥२५७॥

इन जैनियों ने झूठ में भी रस कला का भर दिया!
मीठे वचन से कर उसे मिश्रित अधिक रुचिकर किया!
व्यापार, कार्याचार, धर्माचार इनके झूठ हैं!
बाहर छलकता प्रेम है, भीतर हलाहल कूट है! ॥ २५८ ॥

मार्जार-सा इनका तपोबल पर्व पर ही लेख्य है;
उपवास, पौषध, सामयिक उपतप व्रताम्बिल पेख्य है!
निन्दा, कलह, अपवाद के व्यवसाय खुलते हैं तभी!
एकत्र होकर क्या यहाँ ये काम हैं करते सभी? ॥ २५९ ॥

पड़ कर समय के फेर में ये वर्ण पैत्रिक बन हुये;
तब वर्ण वर्णान्तर हुये, ये जाति जात्यन्तर हुये।
इस भाँति से वर वर्ण के लाखों विभाजन हो गये!
जितने पिता इस में हुये उपगोत्र इतने हो गये! ॥ २६५ ॥

इस एक मत के नाम पर हैं; जाति-दल कितने हुये?
अब एक मत के देखिये उपगोत्र कुल इतने हुये।
वह आर्य, हिन्दू, जैन हैं, श्वेताम्बरी, श्रीमाल हैं;
गण्डानुगत, वंशानुगत, गोत्रानुगत के जाल हैं॥ २६६ ॥

कुल जैन तेरह लक्ष होंगे, अधिक होने के नहीं;
इस बीस सहस्र गोत्र होंगे—अल्प होने के नहीं।
इस अल्प संख्यक जाति का ऐसा भयंकर हाल है।
हा! एक वह भी काल था अब एक यह भी काल है॥२६७॥

जात्यन्तरित फिर गोत्र बढ़कर साम्प्रदायिक बन गये;
पारस्परिक व्यवहार, प्रेमाचार सब भी गल गये।
इन दिगम्बरी श्वेताम्बरों में अब नहीं होते प्रणय,
संकीर्ण दिन दिन हो रहे अब हृदय में होते विलय॥२६८॥

जितने अमर इन पर भयंकर आज इनके पड़ रहे
होकर महोदर हाय! सब इन का पसारा कर रहे!
अब वह न इनमें प्रेम है, सौहार्द है, वात्सल्य है,
अब प्राणघातक फूट का बढ़ा और ही आनन्द है!! ॥२६९॥

हाट-माला

जी ! देखिये ये शाह हैं, ये स्नान है करते नहीं;
इनको बदलने वस्त्र भी अवकाश है मिलते नहीं।
है हाट इनकी शूद्र-सी, दुर्गन्धयुत सामान है,
पर शूद्र तो ये हैं नहीं, ये शाह जी श्रीमान हैं ॥२७०॥

जीरा, मसाला, तेल इनका तोलना ही काम है;
इन शाह जी ने तोलने में ही कमाया नाम है।
जितने तरल, रस, पाक हैं—मिश्रण बिना नहिं एक है,
दूना, तिगूना कर चुके, पर भाव फिर भी एक है ॥२७१॥

व्यापार में बढ़ती इधर ये कुछ दिनों से कर रहे;
दिन रात इनके ग्राहकों से हाट घर हैं भर रहे।
सर्वत्र कन्या-माल की है माँग बढ़ती जा रही;
कन्या कुमारी मोहरों से आज तोली जा रहीं !!! ॥२७२॥

पुखराज, मानिक, रत्न के व्यापार होते थे यहाँ !—
अब देख लो चूना कली के ढेर हैं बिकते यहाँ !
जीवादियुत धानादि के भण्डार भी मौजूद हैं !
दोगे न यदि तुम दाम, तो दो सैकड़े पर सूद है ॥२७३॥

जी ! यह बड़ा बाजार है—श्रीमान, शाहूकार हैं;
दिनरात सट्टा, फाटका ही आपका व्यापार है।
ये सब विदेशी माल के एजेन्ट, ठेकेदार हैं;
इस देश के इनके विदेशी नाथ ही आधार हैं !! ॥२७४॥

हे नाथ ! दीनबन्धु तो रहते भक्त होकर आपके ?
सब कुछ हमारे आप हैं, हे नाथ ! हम हैं आपके।
हे नाथ ! दुर्दिन देख के दुःखार न हो अब पायेंगे ?
हे नाथ ! अब तुम ही बताओ अधिक हम पायेंगे ॥२१४॥

हे नाथ ! भारत हीन है ! संसार इसको दीन है !
धन हीन है, मति हीन है ! हा ! घोर विपदाधीन है !
सद्बुद्धि देकर नाथ ! अब इसको सबल कर दीजिये
यह कलानल विपदावरण का नाथ ! अब हर लीजिये ॥२१५॥

होकर पिता क्या तुम हमें लेते नहीं हैं पुत्र की ?
करुणा हमारी क्या नहीं, अवहेलना हो अब गोत्र की ?
हम हैं सनातन भक्त तेरे आज भी हम भक्त हैं
कर भीति विपदामक्त होकर आ हमारी मे रक्त हैं ॥२१६॥

जब जब बढ़ा अतिचार जग में, जन्म तुम धारते रहे
निज भक्तजन के दोष को तुम ही सदा हरते रहे।
अब नाथ ! बन कर वीर जग में जन्म धारण कीजिये
दुखित हुये इस दैन्यजन की भक्ति अब कर दीजिये ॥२१७॥

पावन भारतवर्ष को स्वाधीन अब कर जाइये
हम भक्त होकर आपके किसको भजें बतलाइये ?
बढ़ता हुआ मौदय तुम्हें देने बिनो भगवान है
दयहीन दयानिधि ! हो रहे क्यों जब हम दयनीय हैं ॥२१८॥

फिर से दयामय ! मानसों में प्रेम-रस भर जाइये,
हम पतित होकर हो रहे पशु, मनुज फिर कर जाइये।
गोपाल बनकर नाथ ! कब होगा तुम्हारा अवतरण ?
अब दुख अधिक नहिं दीजिये, हर लीजिये अब तम तरण ॥३२०॥

स्वाधीन भारतवर्ष हो, इसके सभी दुख नष्ट हो;
यह सह चुका है दुःख अति इसको न आगे कष्ट हो।
हम भी हमारी ओर से करते यहाँ सदुपाय हैं;
पर आपके बल के बिना तो यत्न सब निरुपाय हैं ॥३२१॥

कैसे कहूँ भावी यहाँ ? कैसे सजग परिजन करूँ ?
मैं आप तिमिराभूत हूँ, कैसे तिमिर में पद धरूँ ?
जिस युक्ति से भावी कहूँ, वह युक्ति तो बतलाइये,
दैवज्ञ मैं तो हूँ नहीं, यह आप ही लिखवाइये ॥३२२॥

भविष्यत् खण्ड

लेखनी

हा! या हुआ है लेखनी! तू मूक, स्तब्धि से चुके!
कर ध्यान कार्यों का कभी से हीन संज्ञा हो चुकी!
विस्मृत न कर अब लेखनी! तुझसे न अब क्या स्तूप रहा?
मैं क्या लिखूँ! कैसे लिखूँ! तुझसे न लिखने बन रहा!! ॥१॥

लेखनी के उत्तर—

दिनकर दिवाकर हो गया! रजनीश कुहुकर हो गया!
उत्तर अनुत्तर हो गया! मृदु वायु विषधर हो गया!
गर्वे हुआ है गर्व! गर्व विनष्ट! रिपु हो गये!
अपना हुआ है गर्व! अब धर्म पातक हो गये!! ॥२॥

रक्त प्रवाहित हो चुके! अंदेह उत्पादित हो चुके!
दोनों कुकर्मी हो चुके! दोनों निकर्मी हो चुके!
हर रीत हा! हर धर्म हा! हर कर्म नारद हो चुका।
हो जाना जावे न यह, अब आज देना हो चुका!! ॥३॥

अवसर हमारा आज है! हा! बुद्धि में संविकार है!
वैराग्य, विषय-भोग, मत्सर, राग के व्यापार हैं!
सर्वत्र अंधकार, दिवाकर, अवनकार है!
तुमने समाकर हो गये अवरोध नवकार हैं!! ॥४॥

अब भी समय है चेतने का यत्न अब भी कर सको;
अब भी नसों में शक्ति है, जीवन मरण को कर सको।
जो हो चुका, सो हो चुका अब ध्यान उसका मत करो;
पापी अनागत के लिए सब मन्त्रणा मिलकर करो ॥५॥

उद्बोधन

मेरे दिगम्बर भाइयो! श्वेताम्बरो! मेरी सुनो;
मैं भी सहोदर आपका हूँ, आज तो मेरी सुनो।
पारस्परिक रणद्वन्द्व को हम रोक दें बस एक दम;
कंधे मिलाकर साथ में आगे बढ़ा दें रे! कदम ॥६॥

हम पुरुष हैं, पुरुषार्थ करना ही हमारा धर्म है;
पुरुषार्थ करने पर न हो, वह कौन ऐसा कर्म है?
होकर मनुज नैराश्य को नहिं पास लाना चाहिए;
नर हैं नहीं नारित्व का कुछ भाव होना चाहिए ॥ ७ ॥

हम ही ऋषभ, अरनाथ हैं, भुजबल, भरत, बलराम हैं;
हम ही युधिष्ठिर भीम हैं, घनश्याम, अर्जुन, राम हैं।
कंधे भिड़ाकर हम चलें, फिर क्या नहीं हम कर सकें?
कलिराज के काले शिविर उन्मूल जड़ से कर सकें ॥ ८ ॥

पारस्परिक इस द्वेष के ये तीर्थ, आगम मूल हैं;
अमृत गरल है हो रहा!—इसमें हमारी भूल है।
मति-भ्रष्ट हम सब हो रहे, हम द्वेष में हैं सन रहे!
इस हेतु आगम, तीर्थ भी सब प्राण-नाशक बन रहे !!! ॥ ९ ॥

'जिन राज वाङ्मय' नाम की संस्था प्रथम स्थापित करें;
दोनों दलों के ग्रन्थ जिन-साहित्य में परिणित करें।
संमोह, पक्षापक्ष का कोई नहीं फिर काम हो;
ऊपर किसी भी ग्रन्थ के नहि साम्प्रदायिक नाम हो ॥ १० ॥

ये साम्प्रदायिक नाम यों कुछ काल में उड़ जायेंगे;
संतान भावी को खटकने ये नहीं कुछ पायेंगे।
यों एक दिन जाकर कभी क्रम एक विध बन, जायगा;
सर्वत्र विद्याभ्यास में यह भाव ही लहरायगा ॥ ११ ॥

हैं भिन्न पुस्तक, भिन्न शिक्षक, भिन्न हैं सब श्रेणियें;
होती न क्या पर स्कूल में हैं एक भाषा, शैलियें?
विद्यार्थियों में किस तरह होता परस्पर मेल है?
हो भिन्न भी यदि श्रेणियें, बढ़ता न मन में मैल है ॥ १२ ॥

यदि साम्प्रदायिक मोह हम इन मंदिरों से तोड़ दें;
सब साम्प्रदायिक स्वत्व को हम तीर्थ में भी छोड़ दें—
फिर देखिये कृतयुग यही कलियुग अचिर बन जायगा;
यह साम्प्रदायिक रोग फिर क्षण मात्र में उड़ जायगा ॥ १३ ॥

यह काम यदि हो जाय तो बस जय-विजय सब होगई!
भ्रातृत्व हममें आगया, जड़ फूट की बस खो गई!
कवि, शेष वर्णन भाग्य का फिर क्या हमारे कर सके?
हम-सा सुखी संसार में फिर कौन बोलो रह सकें! ॥ १

हाँ, देखने ऐसा दिवस दृढ़ यत्न होना चाहिए;
बलिदान तक के भी लिये कटिबद्ध होना चाहिए।
हे नाथ ! दो सद्बुद्धि, जिससे सहज ही यह काम हो;
फिर से हमारा जैन-जग अभिराम, शोभाधाम हो ॥ १५ ॥

आओ समस्यायें विचारें आज मिलकर हम सभी;
हम दो नहीं, हम शत नहीं, हैं लक्ष तेरह हम अभी।
इतना बड़ा समुदाय बोलो क्या नहीं कुछ कर सकें ?
हट जायँ तो गिरिराज का समतल धरातल कर सकें ॥ १६ ॥

अनुचर सभी हो वीर के, तुम वीर की संतान हो,
जिसके पिता, गुरु वीर हों, फिर क्यों न वह बलवान हो ?
जिनवीर के अनुयायियो ! लज्जित न पुरखों को करो;
नर हो, न आशा को तजो, होकर न पशु तुम यों मरो ॥ १७ ॥

मन के बलवान हैं, हाथ हैं, अवशेष कुछ बल बुद्धि है,
कुछ तो बलवान आगे बढ़ो, पुरुषार्थ में धन-सिद्धि है।
पूर्वज तुम्हारे वीर थे, तुम भीरु, कायर हो गये !
नर के न तुम अब रह गये, तुम रह पशु के हो गये !!! ॥ १८ ॥

अवसर पड़े पूर्वज तुम्हारे देखते कुछ कहीं !
मैं मन्द कहता हूँ सभी ! पहिचान के सकते नहीं !
रहन, सहन, वचन, व्यवहार में बदलन तुम्हारे आ गया !
अनुबन्ध है अब स्वार्थ में अनुबन्ध तुममें आ गया !!! ॥ १९ ॥

देखो न विषवायें घरों में किस तरह हैं सड़ रहीं !
सब ठौर तुममें धूम कैसी शिशु प्रणय की बढ़ रही !
खलु ब्रह्मव्रत ही नीम है उत्थान की वैसे अरे !
जब नीम ही दृढ़ है नहीं, मंजिल नहीं कैसे गिरे ? ॥ २० ॥

आत्मसंवेदन

हे देव ! अनुचित प्रणय के सहते कुफल अब तक रहे !
यों मूल अपनी जाति का हम खोदते अब तक रहे !
हा ! इस अमंगल कार्य से हम स्वाह, आधेड़ बन चुके !
जो रह गये आधे अभी, यम बन्ध उन पर कस चुके !!! ॥ २१ ॥

शिशु पत्नि का कैसे भला पति साठ के से प्रेम हो !
सोचो जरा तुम ही भला, इस ठौर कैसे रेम हो !
व्यभिचार, अनुचित प्रेम का विस्तार फिर हा ! क्यों न हो !
हा ! अपहरण, अपघात हा ! हा ! भ्रूण-हत्या क्यों न हो !!!॥२२॥

नारी निरंकुश हो रही, पति भाग्य अपना रो रहे !
विष पत्नि पति को दे रही, पति-देव मूर्छित हो रहे !
आये दिवस ऐसे कथन सुनते ही हैं रहते प्रभो !
जब तक न हो तेरी दया, होगा न कुछ हमसे विभो !!! ॥ २३ ॥

तुममें सुशिक्षा की कमी का भाव जो होता नहीं—
यों आज हमको देखने यह दुर्दिवस मिलता नहीं !
कारण हमारे पतन के सब हैं निहित इस दोष में !
हे आलियो ! मैं कह रहा हूँ सोचकर, नहि रोष में !!! ॥ २४ ॥

---

* निर्दंड,

होता तनिक भी ज्ञान यदि तुममें, न होती यह दशा !
इस हेतु तुम भी मूर्ख हो, नारी तुम्हारी कर्कशा !
शिक्षा बिना मतिधर मनुज उल्लू, निशाचर, पशु है !
हम इस कथन की पुष्टि में स्वर लेख लो—प्रत्यक्ष है !!! ॥ २५ ॥

मिलकर सभी क्या अज्ञता का भार हर सकते नहीं ?
दीपक जला तम तोमका क्या नाश कर सकते नहीं ?
साहस करो—सब हो सके—हमको असंभव कुछ नहीं;
नरवर नपोलिन वीर को क्या था असंभव कुछ कहीं ? ॥ २६ ॥

भेद-भाव-कुभाव को अब भूल जाना चाहिए,
सब साम्प्रदायिक मोह-माया त्याग देना चाहिए,
फैली हुई दुष्कूट का सिर तोड़ देना चाहिए,
सबको सहोदर मानकर मन को मिलाना चाहिए ॥ २७ ॥

करना हमें सब में प्रथम विस्तार शिक्षाचार का;
होता यहीं पर जन्म है सद्ज्ञान, शिष्टाचार का।
परमार्थ, शिवपद, काम का दरिद्रार शिक्षाचार है;
देवादि लोगों के लिये यह एक ही रत्नाचार है ॥ २८ ॥

शिक्षा बिना अज्ञान संभव हो नहीं सकता सखे !
शिक्षा बिना नहिं कर्म कोई पुरुष हो सकता सखे !
हा ! देख ! कुत्सित कर्म कैसे कर रहे हैं नित्य अब !
आदर्शता में क्या दिखो ! होते न हम विमुख अब ? ॥ २९ ॥

क्या बन्धुओ ! अब भी तुम्हें संवेदना नहीं आयगी ?
तुम खो चुके सर्वस्व, अब दासी बदन पर आयगी !
हे बन्धुओ ! अब तो जगो, अब तो सहा जाता नहीं !
संबोध करता हूँ तुम्हें, मुझसे रहा जाता नहीं !!! ॥ ३० ॥

आचार्य—साधु—मुनि

गुरुराज ! तुम संसार के परित्यक्त नाते कर चुके,
तुम मोह-माया कामिनी के कष्ट को भी तज चुके,
ऐसी दशा में आपको संबोध अब कुछ है नहीं—
पाठिन्य जिसमें हो तुम्हें ऐसा न फिर कुछ है कहीं ॥ ३१ ॥

जगसे प्रयोजन है नहीं, जग से न कोई अर्थ है;
परिवार, नाते, गोत्र के सम्बन्ध सब निःसर्ग हैं।
निर्धन बने कोटीश चाहे, भूप कोई रंक हो;
तुमको किसी से युद्ध नहीं—सब ओर से निःशंक हो ॥ ३२ ॥

गुरुदेव ! चाहो आज तो सब कुछ अभी भी कर सको;
तुममें अभी भी तेज है, तुम तन अभी भी हर सको।
सम्राट् हो कोई पुरुष, कोई भला अघोर हो;
अजपूत हो तुम, क्या करे दर भूप हो, अनरेश हो ? ॥ ३३ ॥

पर साधुपन जब तक न सच्चा आपका गुरु होगा,
जो तेज तुममें है, नहीं कुछ भी प्रकाशक होगा !
गुरु ! आपको भी राग-आसर, मोह-माया लग गई !
पाकर प्रपंचों में तुम्हारी साधुता सब दब गई !! ॥ ३४ ॥

जब तज चुके तुम विश्वको—अपमान, आदर कुछ नहीं;
अन्मुख सभी हो जायँ तुमसे—कर सकेंगे कुछ नहीं।
त्यागी विरागी-साधु हो, अवधूत हो, तप प्राण हो;
संयम असंयम कर सको तुम कर्म-प्राणा-प्राण हो॥ ३५॥

कर में तुम्हारे आज भी गुरुराज! यह जिन जाति है,
सकती न हिल इस ओर से उस ओर कोई भाँति है!
तुम हो पिता, यह है सुता—विच्छेद कैसे घट सकें?
शाखा भला निज वृक्ष से क्या भिन्न होकर फल सकें॥ ३६॥

जिन जाति जीवन प्राण के तुम मर्म हो, तुम धर्म हो,
तुम योग हो, तुम त्याग हो तुम ज्ञान हो, तुम कर्म हो,
आगम निगम हो, शास्त्र हो, साहित्य के तुम मूल हो,
आध्यात्म जीवन के लिये जलवायु तुम अनुकूल हो॥ ३७॥

हा! हन! हे भगवन्! कैसे आज हो तुम, क्या कहूँ?
मैं बहुत क्षुद्र हूँ कह चुका इससे अधिक अब क्या कहूँ?
मैं नम्रता से कर रही हूँ प्रार्थना गुरु! आपसे,—
गुरुदेव! अपराधी आपकी अज्ञान है क्या आपसे?॥ ३८॥

मुनिवर्ग में सर्वत्र ही है रण पारस्पर हो रहे!
इस रण-धर्म में धर्म के सब तत्त्व मुर्दे हो रहे!
मन, मन, वचन अरु कर्म में यदि मैं तुम्हारे योग था!
आचार में, व्यवहार में नहिं लेश भर भी रोग था॥ ३९॥

जब साम्प्रदायिक द्वेष, मत्सर से तुम्हें भी द्वेष था;
उन सद्गुरों में आपके जब क्लेश का नहिं लेश था,
जिन जाति का उत्थान भी संभव तभी था हो सका !
जब गिर गये गुरु ! आप, पतनारंभ इसका हो सका ॥ ४० ॥

जिन धर्म के कल्याण की यदि है उरों में कामना,
जिन जाति के उत्थान की यदि है उरों में चाहना,
इस वेषपन को छोड़कर सम्यक्त्व-व्रत तुम दृढ़ करो;
यों साम्प्रदायिक व्याधियों का मूल उच्छेदन करो ॥ ४१ ॥

कंचन तुम्हें नहिं चाहिए, नहिं चाहिए तुमको प्रिया;
फिर किस तरह गुरु ! आपमें यों चल रही है अनुशया ?
आत्माभिसाधन के लिये संसार तुमने है तजा;
फिर प्रेम कर संसार से क्यों आप पाते हैं सजा ? ॥ ४२ ॥

बदला हुआ है अब जमाना, काल अब वह है नहीं;
उस काल की बातें सभी अनुकूल घटती हैं नहीं।
युग-धर्म को समझो विभो ! तुम से यही अनुरोध है;
कर्तव्य क्या है आपका करना प्रथम यह शोध है ? ॥ ४३ ॥

इसमें न कोई झूठ है, अब मोक्ष मिलने का नहीं;
तुम तो भला क्या सिद्ध को भी मोक्ष होने का नहीं !
तिस पर तुम्हें तो राग, माया, क्रोध से अति प्रेम है;
श्रावक, श्रमण मिलकर उठो, अब तो इसी में क्षेम है ॥ ४४ ॥

अब एक मेरी प्रार्थना है आप यदि गुरु ! मानलें—
यह वेष पावन भूलकर यह वेष भिक्षुक जानलें।
गुरुदेव ! भिक्षुक से अधिक अब मान तो है आपका ?
तुम पूज्य अपने को कहो, नहिं पूज्य-पद है आपका !! ॥ ५५ ॥

जिस क्षेत्र में तुम फूट के हो बीज गुरुवर ! बो चुके,
उस क्षेत्रतल में आप भी आराम से बस सो चुके !
निष्कर्ष अन्तिम यह हुआ इस अवदशा पर ध्यान दो;
गुरु ! काटकर यह शल्य कुत्सित आज जीवन दान दो ॥ ५६ ॥

गुरुदेव ! पूर्वाचार्यवत् आदर्श जीवन तुम करो;
पचेन्द्रियों का संवरण कर शीलमय संयम करो।
त्रयगुप्ति, पंचाचार का, व्यवहार का पालन करो,
जीवन करो तुम समितिमय—आचार्य-पद सार्थक करो ॥ ५७ ॥

दुःशीलता से वैर हो, तुमको घृणा हो रूप से;
तुमको न कोई अर्थ हो श्रीमंत, निर्धन, भूप से।
गौरव-भरी प्राचीनता की ज्योति फिर वह जग उठे;
यह रवि-उदय के आगमन पर तम तिलामिल जल उठे ॥ ५८ ॥

चारित्र-दर्शन-ज्ञानमय वातावरण जलवायु हो;
ऐसा सुखद वातावरण हो—क्यों न हम दीर्घायु हों ?
गुरुवर ! अहिंसावाद का जग को पढ़ा दो पाठ तुम;
हम रह गये पीछे अधिक—आगे बढ़ा दो आज तुम ॥ ५९ ॥

इस साम्प्रदायिक द्वेष-मत्सर-राग को तुम छोड़ दो;
खण्डित हुये इस धर्म के तुम खण्ड फिर से जोड़ दो।
अब भी तुम्हारा तेज है—इतने पतित तो हो नहीं;
आम्नानुलंघन हम करें गुरु!—धृष्ट इतने तो नहीं॥ ६०॥

साध्वियें

हे साध्वियो! स्त्युद्धार का अब भार तुम संभाल लो;
जिसके लिये तुम थीं चली पति-गेह तजकर-सार लो।
नारीत्व में शृङ्गार के जो भाव घर कर घुस गये—
उनके अखाड़े तोड़ दो—सद् भाग्य जग के जग गये॥ ६१॥

स्त्रीवर्ग का सिंहावलोकन आज तुम आचरण करो;
स्त्रीवर्ग को पूज्ये! उठाने का अचल व्रत तुम करो।
आदर्श होंगी आप तो—आदर्श होंगी नारियें;
यदि बढ़ रही हैं आप कुछ, तो बढ़ सकेंगी गृहलियें॥ ६२॥

हे साध्वियो! फिर आप भी तो साधुओं के तुल्य हैं,
इनसे न कुछ हैं आप कम-इनसे न कुछ कम मूल्य हैं।
आत्मार्थ साधन के लिये तुमने तजा पतिगेह को
समझे न कोई चीज फिर इस निज विनश्वर देह को॥ ६३॥

नेता

नेता जनो! यदि धर्म है कुछ आपके इस प्राण में
सर्वस्व यदि तुम दे रहे हो जाति के कल्याण में,
फिर क्यों नहीं जूता नया तुम आज तक कुछ कर सके?
इनको परस्पर या लड़ाकर उदर अपना भर सके?॥ ६४॥

नहि ध्यान तुमको जाति का, चिंता नहीं कुछ धर्म की;
उन्मूल चाहे देश हो,—सोचो नहीं तुम मर्म की।
रोते हुए निज बन्धु पर तुमको दया नहिं आ रही;
उनके घरों में शोक है, लीला तुम्हें है भा रही! ॥ ७५ ॥

रसचार श्रीधर! आपका अब लेखने ही योग्य है!
क्रंदन तुम्हारे बन्धु का भी श्रवण करने योग्य है!
श्रीमन्त! देखो तो तुम्हारा वृत्त कैसा हो रहा!
दयनीय हालत देखकर यह जन तुम्हारा रो रहा! ॥ ७६ ॥

अब रह गये कुल आपके ये चार जीवन-सार हैं—
रतिचार है, रसचार है, शृङ्गार है, रसदार है।
तुमको कहाँ अवकाश है 'रतिजान' के तनहार से!—
क्या तार उर के हिल उठेंगे दीन की चित्कार से? ॥ ७७ ॥

तुमको पड़ी क्या दीन से? क्यों दीन का चिन्तन करो!
नानी मरी है आपकी जो आप यों झंझट करो!
रसचार पीछे क्या छिपा है आपको कुछ भान है?
कृतकाम कौशल हो रहा यमराज का कुछ ध्यान है? ॥ ७८ ॥

तुम जाति का, तुम देश का दारिद्र्य चाहो दूर सको;
यह कारखाने खोलकर तुम निमिष भर में कर सको।
धनराशि कुछ कमती नहीं अब भी तुम्हारे पास में,
कैसे सकोगे सोच पर सोते हुये रतिवास में!! ॥ ७९ ॥

सीमन्त हो, पर वस्तुतः श्रीमंतता तुममें नहीं;
लक्षण कहीं भी आपमें श्रीमन्त के मिलते नहीं!
श्रीमन्त भामाशाह थे, श्रीमन्त जगडूशाह थे;—
वे देश के, निज जाति के थे भक्तवर, वरशाह थे!! ॥ ८० ॥

उन मस्तकों में शक्ति थी, उनको रसों से मुक्ति थी;
निज जाति प्रति, निज धर्म प्रति उनके उरों में भक्ति थी।
श्रीमन्त वे भी एक थे, श्रीमन्त तुम भी एक हो—
कंजूस, मक्खीचूस तुम श्रीमन्त! नम्बर एक हो!! ॥ ८१ ॥

नहिं धर्म से कुछ प्रेम है, साहित्य से अनुराग है!
अतिरिक्त रति-रस-रास के किसमें तुम्हारा राग है?
जब आठ की तुमको प्रिया वय साठ में भी मिल सके;
ऐसे भला रसरास में तुम ही कहो-चक्षु खुल सके? ॥८२॥

तुमको कहो क्या जाति का दुर्दैन्य खलता है नहीं?
पड़ती उधर यदि है दशा, चढ़ती इधर तो है सही?
हैं आप भी तो जाति के ही स्तंभ अथवा अंश रे!
भूचाल से शायद अचल होते न होंगे ध्वंश रे! ॥ ८३ ॥

अवहेलना कर जाति की तुम स्वर्ग चढ़ सकते नहीं;
रहना उसी में है तुम्हें, हो भिन्न जी सकते नहीं!
श्रीमन्त! चाहो आप तो सम्पन्न भारत कर सको;
आर्थिक समस्या देश की सुन्दर अभी भी कर सको ॥ ८४ ॥

❀ जैन जगती ❀

तुमने किया क्या आज तक ? क्या कर रहे तुम हो अभी ?
अधिकांश लेखा दे चुका; अवशिष्ट भी सुनलो अभी।
पर चेतना से हाय ! तुम कब तक रहोगे दूर यों ?
मूर्च्छा कहो कब तक तुम्हारे से न होगी दूर यों ? ॥ ८५ ॥

पैसा तुम्हारे पास है जब, क्या तुम्हें दुख हो सके ?
नव नव तुम्हारे पाणि-पीडन सरलता से हो सके !
झगड़े-बखेड़े जाति में दिन-रात तुम फैला रहे;—
क्या जाति के हरने नहीं तुम प्राण जीवन पा रहे ? ॥ ८६ ॥

तुम बिन कहो हम हैं नहीं, हम बिन नहीं कुछ आप हो;
हम हैं अनुग सब आपके, अमग हमारे आप हो।
अतिरिक्त हम हो आपके फिर कौन जन सुखकंद है ?
हम,—आपमें शिव प्रेम हो—आनंद ही आनंद है ॥ ८७ ॥

अब छोड़कर यह रास-रस कुछ जाति का चिंतन करो;
मजबूत कर निज जाति को तुम जाति में सुख-धन भरो।
समझो धरोहर जाति की, निज राष्ट्र की निज कोष की;
कौशल,-कला,-व्यापार से सम्पन्न करदो देश को ॥ ८८ ॥

निज देश की, निज राष्ट्र की, निज धर्म की, निज जाति की,
श्रीमन्त ! पहिले देख लो, है अब दशा किस भाँति की।—
दुर्भिक्ष, संकट, शोक हैं, दारिद्रय, भिक्षा, रोग हैं !
दो-एक हो तो जोड़ दें,—कोटी करोड़ों योग हैं !! ॥ ८९ ॥

श्रीमन्त ! केवल आप ही बस एक ऐसे वैद्य हैं;
ये रोग जिनसे देशके सुन्दर, सरलतम छेद्य हैं।
अधिकांश रोगों के तथा स्त्रि पितृ भी तो आप हैं;
श्रीमन्त ! जिम्मेदार इस बिगड़ी दशा के आप हैं॥ ६० ॥

सबसे प्रथम श्रीमन्त ! तुम इन, इन्द्रियों को वश करो;
तन, मन, वचन पर योग हो, धन धर्म के अधिकृत करो।
तन, मन, वचन, धन आपका हो देश भारत के लिये ;
रस, रास, छोड़ो आज तुम निज जाति-जीवन के लिये॥ ६१ ॥

अपखर्च को अब रोक दो, अब दीन भूमी हो चुकी !
धन, धर्म, पत, विश्वास की सब भाँति से इति हो चुकी !
अनमेल, अनुचित पाणि-पीड़नसे तुम्हें वैराग्य हो,
वह कर्म—संयम,—शीलमय-फिरसे उगा सद्भाग्य हो॥६२॥

अब, मूर्खता से आपको धनधर ! नहीं अनुराग हो ;
मूर्खे ! तुम्हारी यह तो इनमें न तेरा राग हो।
दल साम्प्रदायिक तोड़कर घरको सुधारो आज तुम;
इस दीन भारत के लिये दो हाथ देदो आज तुम॥ ६३॥

निर्धन

तुम हो पुरुष, पुरुषार्थ के नरदेह से अवतार हो ;
पुरुषार्थ ही प्रारब्ध है, फिर क्यों न दलितोद्धार हो।
पुरुषार्थ तो करते नहीं, तुम देव को रोते रहो ;
क्या दिन भले आजायँगे दिन में कि जब सोते रहो ?॥ ६४॥

व्यापार कन्या का करो, जिसमें न पड़ता श्रम तुम्हें !
मुद्रा हजारों मिल रही हैं एक कन्या पर तुम्हें !
जिसके सुता है कक्ष में, कर में उसीके शक्ति है ?
उसके सुता है कक्ष में, जिसके करों में शक्ति है ॥ ९५ ॥

विद्या पढ़ो तुम, ज्ञान सीखो, बुद्धि, करसे काम लो ;
करके रहो उस काम को जो काम उर में धाम लो ।
कैसे अहो ! धनवान तुम देखूँ भला बनते नहीं ;
क्या एक कण के लाख कण निर्धन कृषक करते नहीं ? ॥ ९६ ॥

तुम तुच्छतर-सी बात पर हो ग्राहकों से ऐंठते ;
तुम एक पाई के लिये पद-त्राण-रण कर बैठते ;
व्यापार धन्धे आपके फिर किस तरह से बढ़ सकें ?
घाटा न फिर कैसे रहे ? हम इस तरह जय कर सकें ॥ ९७ ॥

धन प्राप्त करने की कला जाने कलाकर भी नहीं ;
पर मूठ में तुमने कला वह समझ है रक्खी सही ।
यदि बन्धुओ ! सम्पन्नता अंतिम तुम्हारा ध्येय है ;
बल, बुद्धि सत्तम सत्य से पुरुषार्थ करना श्रेय है ॥ ९८ ॥

श्री पूज्य

श्रीपूज्य ! यतिपति आप भी आदर्शता धारण करो ;
सुख-ऐश-वैभव-माल को पाताल में जाकर धरो ।
है आगया शैथिल्य जो, उसको भगादो पुरुष-बन !
शुचि शील, संयम, त्यागमय हो आपका तन, मन, वचन ॥ ९९ ॥

फिर पूर्ववत ही आपका सम्मान नित बढ़ने लगे;
शासन तुम्हारा जाति पर निर्बाध फिर चलने लगे।
सम्राट माने आपको अरु हम प्रजा बन कर रहें;
बढ़ती रहें नित धर्म-ध्वज, परमार्थ में हम रत रहें ॥१००॥

यति

आस्वाद, रस, रति छोड़ दो, अब नेह जग से तोड़ दो;
तन, मन, वचन पर योग कर अब अर्थ-संचय छोड़ दो।
हो पठन-पाठन शास्त्र का कर्तव्य निशिदिन आपका;
धीरो धुरंधर धर्म का प्रत्येक हो जन आपका ॥१०१॥

युवक

युवको! तुम्हारे स्कंध पर सब जाति का निर्भार है;
पौरुष-भरा, जीवन-भरा युवको! तुम्हारी लार है।
पौरुष दिखाओ आज तुम, तुम से बड़ा दुर्दैव है;
तुम देख लो माता तुम्हारी हो रही अवरुद्ध है ॥१०२॥

युवको! तुम्हारे प्राण में रतिभाव आकर सो गया;
सुकुमार रति सम हो गये तुम, वेष रति का हो गया।
रतिभाव जब तुम में भरा, नरभाव तब रति में भरा;
पहिचान भी कठ है कठिन,—तुम युवक हो या अप्सरा ॥१०३॥

रस, रास, आनंद, भोग से सम्बन्ध सत्वर तोड़ दो;
बढ़ बढ़ मारे स्वजन के बदले दया अब छोड़ दो।
दुर्दैव से तुम भिड़ पड़ो,—भूकम्प भूमी पर उठे;
बम राहु का हो मुख पड़े या फिर प्रलयघन घर उठे ॥१०४॥

अवयव तुम्हारे पक गये, यौवन विकच अब हो गया ;
तब शक्ति,बल,मन चरमतम विकसित तुम्हारा होगया।
तम-पक्ष में तुम आज तक बल, शक्ति, मन खोते रहे;
शशि-पक्ष में तो क्या कहूँ, बस तुम सदा रोते रहे !! ॥१०५॥

उस ओर से इस ओर को बल, शक्ति युवको ! मोड़ दो,
आस्वाद इसका भी चखो, कुछ काल को यह छोड़ दो।
ये दिवस दुखिया जाति के पल मारते फिर जायँगे;
बस सजल होते पंक के, पकज अचिर खिल जायँगे ॥१०६॥

संसार-भर की दृष्टि है युवको ! तुम्हारे पर लगी;
तुम हो जगे जिस भाग में, उस भाग में जागृति जगी।
अब ऐक्यता, सौहार्द को तुम भी यहाँ वर्धित करो;
इसके लिये तन, मन, धन सर्वस्व तुम अर्पित करो ॥१०७॥

बस आपके उत्थान पर सम्भव सभी उत्थान हैं;
होते युवक सर्वत्र ही निज जाति के चिद् प्राण हैं।
दायित्व कितना आपका, क्या आपने सोचा कभी ?
चाहो, अभी भी सोचलो,—अवकाश है इतना अभी ॥१०८॥

चलते तुम्हारे चरण हैं, हैं काम कर भी कर रहे;
तुम देखते हो आँख से, तुम बात मुँह से कर रहे।
फिर भी तुम्हारे में मुझे क्यों प्राण नहिं हैं दीखते ?
विज्ञान-युग में राह कहीं चलना नहीं हैं सीखते ? ॥१०९॥

तुम में न कोई जोश है, उत्साह है, बल-स्फूर्ति है;
चलती हुई बल वाष्प के मानों उबल की मूर्ति है।
या विश्व में सब से अधिक जब वृद्ध भारतवर्ष है;
वृद्धत्व में होने किसी के क्या कहीं उत्कर्ष है ?॥११०॥

अपवाद, निन्दावाद में खोते रहोगे वक्त तुम ?
कब तक रहोगे यों प्रिया में हाय ! रे ! अनुरक्त तुम ?
पहिचान तुम अब तक सके नहिं हाय ! अपने आपको;
तुममें अतुल बल,-शौर्य है,—दुष्कर न कुछ भी आपको॥१११॥

नहिं जाति के, नहिं धर्म के, नहिं देश के तुम काम के;
अपनी प्रिया के काम के, आराम के तुम काम के।
लड़ना अकारण हो कहीं तुम हो वहीं पर काम के;
तुम मसखरों के काम के,—क्या हो किसी के काम के ?॥११२॥

पुरुषत्व तो होता फलित बस पूर्ण यौवन-काल में;
प्रतिभा, कला, बल, शक्ति होते प्रौढ़तम इस काल में।
तुम सब गुणों में प्रौढ़ हो—नहिं शक्ति है शायद तुम्हें ?
आगे बढ़ो यदि दो चरण देशी लगे क्या कुछ तुम्हें ?॥११३॥

तुमको तुम्हारे काम के अतिरिक्त है अवसर कहाँ ?
निंदा, अनर्गल, मृत, निष्प्रयोजन में अवसर कहाँ ?
अधिकांश की मन्दाग्नि से बिगड़ी दशा है पेट की !
अवशिष्ट की, मैं क्या कहूँ ? बिगड़ी दशा पाकेट की !! ॥११४॥

पत्रकार

अपवाद,-गुस्सा,-झूठ-लेखन से तुम्हें वैराग्य हो,
बिगड़ी बनाने का तुम्हें उपलब्ध अब सौभाग्य हो।
हमको जगाने के लिए तुम युक्तियों से काम लो,
सोये हुओं को मृत बना दो जो, न उनका नाम लो ॥१३४॥

हे पत्रकारो! पत्र में सुन्दर सुधाकर लेख दो,
मन देखते ही लिख उठे, पढ़कर न तुम अब लेख दो।
यदि व्यक्तिगत-अपवाद भी तुमको कहीं करना पड़े,
ऐसा लिखो बस युक्तिगत वृथा न श्रम करना पड़े ॥१३५॥

बढ़ते हुए कवि, लेखकों को कर पकड़ उत्थित करो,
हे पत्रकारो! कर्म, भी इस तरह समुचित करो।
फिर से नया मण्डन करो इस जाति सर्वांगार का;
अब, मूल उच्छेदन करो बढ़ते हुए अतिचार का ॥१३६॥

अब राग, मत्सर, द्वेष के विष-कर बढ़ाना छोड़ दो,
इस ओर से उस ओर की अब गति बढ़ाना तोड़ दो।
हर पत्र हो नर मात्र का, हो साम्प्रदायिक बढ़ मरे,
बस साम्प्रदायिक पत्र से नहिं पत्र आवित बढ़ सिमे ॥१३७॥

शिक्षण-संस्थाओं के संचालक

संचालको! विद्यालयन सब आपके आदरा हो,
सर्वत्र विद्यालयों का अधिकाय बड़ा कारण हो।
शिक्षक सभी गुणवान हो, सब छात्र सुविकसित हो,
कल्याण बढ़ाकर का सुन्दर शिव सुखाश्रित हो ॥१३८॥

तीर्थ

ये तीर्थ पावन धाम हैं, मात्सर्य्य का क्या काम है;
द्विज, शूद्र दोनों के लिये ये तीर्थ सम सुखदाम हैं।
द्विज ! साम्प्रदायिक पंक से पंकिल इन्हें तुम मत करो;
दर्शन निमित आये हुए नहि शूद्र को वर्जित करो ॥१७०॥
एकत्र अगणित कोष का करना यहाँ अब व्यर्थ है;
इनमें करोड़ों हैं जमा, उपयोग क्या ? क्या अर्थ है ?
हे बन्धुओ ! तुम कोर्ट में इनके लिये अब मत बढ़ो;
अब लड़ चुके तुम बहुत ही, आगे कृपा कर मत बढ़ो ॥१७१॥

मन्दिर

पण्डे पुजारी अब विधर्मी वैतनिक रहने न दो;
गणना तुम्हारे मंदिरों की अब अधिक बढ़ने न दो।
यों पतित होकर भक्त-जन हैं भृत्य-पद पर आगये;
हा ! घन-घटा-से भृत्यगण सर्वत्र देखो छागये ॥१७२॥

विद्या-प्रेम

यों शिक्षणालय खोलने की धुन तुम्हारी योग्य है;
शिक्षा-प्रणाली पर तुम्हारी ध्यान देने योग्य है।
शिक्षापरायण शिक्षणालय एक इनमें हैं नहीं,
सब साम्प्रदायिक अड्डे हैं, विद्या-परायण हैं नहीं ॥१७३॥
विद्या-भवन में विष भरा शिक्षण न विद्यादान दो;
विद्यार्थियों को अब नहीं ऐसा अपावन ज्ञान दो।
बालक अधूरा ज्ञान में घर का न कोई घाट का;
वह हाट में भी क्या करे, नहि ज्ञान जिसको बाट का ?॥१७४॥

परिशिष्ट

[कागज की मँहगाई तथा छपाई-व्यय के बढ़ जाने से टिप्पणियाँ संक्षेप में दी जाती हैं, क्षमा करें। स्वर्गीय श्रीमद् विजयभूपेन्द्रसूरीश्वर जी के सुशिष्य मुनिराज श्री कल्याणविजयजी के सौजन्य से प्राप्त ग्रन्थों के आधार पर टिप्पणियाँ दी गई हैं। लेखक इन मुनिराज का आभारी है।]

१—गिरिराज हिमालय भूगोल-प्रसिद्ध पर्वत है और विश्व में सब पर्वतों से उच्चतम पर्वत है।

२—भगवान ऋषभदेव—ये इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न नाभि कुलकर के पुत्र थे। ये जैन धर्म के इस अवसर्पिणी कालमें आदि प्रवर्तक हुये हैं। असि (शस्त्रास्त्र), मसि (लेखन) और कृषि (कृषी) ये तीनों कर्म सर्वप्रथम मानव-समाज में प्रचलित करने वाले भगवान ऋषभ ही हैं। वेदों की रचना भी आप ही के काल में हुई। ७२ नर-कला, ६४ नारी-कला तथा १४ विद्याओं की रचना भी आप ही ने की। भगवान ऋषभ देव की आयु ८४ लाख पूर्व की थी। राजोपाधि सर्व प्रथम जगत में आपने ही धारण की थी।

३—विमलवाहन—ये प्रायः श्वेतगज की सवारी करते थे इस लिये इनका नाम विमलवाहन विश्रुत हो गया। ये प्रथम

[illegible]

[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
१	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
२	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]			[illegible]
३	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]		[illegible]	[illegible]
४	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]			[illegible]
५	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]			[illegible]
६	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]			[illegible]
७	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]		[illegible]	[illegible]
८	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]		[illegible]	[illegible]
९	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]		[illegible]	[illegible]

तीर्थंकर

सं०	नाम	पिता	माता	नगर	लंछन	शरीर वर्ण	शरीर मान	आयु
१	ऋषभदेव	नाभिराजा	मरुदेवा	अयोध्या	वृषभ	स्वर्ण	५०० धनुष	८४ लक्ष पूर्व
२	अजितनाथ	जितशत्रु	विजया	,,	हस्ति	,,	४५० ,,	७२ ,,
३	संभवनाथ	जितारी	सेनाराणी	श्रावस्ति	अश्व	,,	४०० ,,	६० ,,
४	अभिनंदन	संवर राजा	सिद्धार्था	अयोध्या	कपि	,,	३५० ,,	५० ,,
५	सुमतिनाथ	मेघभूप	सुमंगला	,,	क्रौंच	,,	३०० ,,	४० ,,
६	पद्मप्रभ	श्रीधर	सुसीमा	कौशांबी	पद्म	रक्त	२५० ,,	३० ,,
७	सुपार्श्वनाथ	सुप्रतिष्ठ	पृथ्वी	काशी	स्वस्तिक	स्वर्ण	२०० ,,	२० ,,
८	चन्द्रप्रभ	महासेन	लक्ष्मणा	चन्द्रपुरी	चन्द्र	श्वेत	१५० ,,	१० ,,
९	सुविधिनाथ	सुग्रीव	रामा	काकंदी	मकर	,,	१०० ,,	२ ,,
१०	शीतलनाथ	दृढरथ	नन्दा	भद्दिलपुर	श्रीवत्स	स्वर्ण	९० ,,	१ ,,
११	श्रेयांसनाथ	विष्णुनृप	विष्णुमाता	सिंहपुर	गण्डक	,,	८० ,,	८४ लक्ष वर्ष

[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

२७—राजा मयूरध्वज—ये बड़े धर्मिष्ठ, दृढ़व्रती एवं दृढ़ वचनी थे। इनकी कथा सर्वत्र विश्रुत है। वचनबद्ध होकर ये अपने प्रिय पुत्र ताम्रध्वज की देह को भी चीर कर दो करने में नहीं हिचकाये थे।

२८—शालिभद्र—ये पूर्व भव में अहीर थे। इनकी माता बड़ी कठिनाई से उदर-भरण करती थी। प्रायः माता-बेटे को निरन्न रह कर कितने ही दिन निकालने पड़ते थे। एक दिन इनकी माता ने बड़ा श्रम करके इनके लिये खीर बनाई। माता कार्यवशात् कहीं थोड़ी देर के लिये इधर उधर चली गई। पीछे से एक मुनिराज आहारार्थ इनके द्वार पर आये और इन्होंने वह समस्त खीर मुनिराज को बहरा दी। जब माता लौट कर आई और देखा कि खीर बूंद भर भी अवशिष्ट नहीं बची है; उसने सोचा लड़का क्षुधातुर था अतएव इतनी खीर खा सका। शालिभद्र की दृष्टि बैठ गई और पञ्चत्व को प्राप्त हुए।

२९—भगवान शान्तिनाथ—ये पूर्वभव में राजा मेघरथ थे। एक दिन ये राजसभा में सिंहासनस्थ थे कि अचानक उनके अंग में आकर एक संत्रस्त कपोत गिर पड़ा और शरण खोजने लगा। मेघरथ ने देखा कि एक बाज उसका पीछा किये हुए है। इतने में बाज भी राजा के संनिकट आगया और बोला, 'राजन्! मेरा भक्ष मुझे दीजिये। मुझे क्षुधा से पीड़ित रखकर आप कपोत की रक्षा करते हैं, एक पर स्नेह और एक से द्वेष—यह न्याय-संगत नहीं। अगर आप अपनी देह से आमिष काटकर इस कपोत के तोल के बराबर मुझे दें तो मैं इस कपोत को छोड़

कहता है।' राजा ने तुला मँगवाई और एक ओर कबूतर को रखा और दूसरी ओर अपनी देह से आमिष काटकर रखा परन्तु कबूतर के भार के बराबर वह न हो सका। राजा ने फिर मांस काटकर रखा लेकिन फिर भी कबूतर के तौल के साथ न हो सका, तब राजा मेघरथ स्वयं तुला पर चढ़ गये। कबूतर एवं बाज दोनों प्रकट होकर कहने लगे, 'राजन्! हम देव हैं, और आपके धर्म की परीक्षा लेने आये थे। क्षमा कीजिये।' राजा की देह पूर्ववत् हो गई और वे दोनों देव अपने-अपने स्थान को गये। हिन्दू समाज में यह कथा राजा शिवि के नाम से प्रसिद्ध है।

१०—राजा हरिश्चन्द्र सत्यवादी—ये एक सत्य-व्रत के लिये सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। ये भगवान शान्तिनाथ के समय में हुए थे। इन्होंने सत्य की रक्षा के लिये श्मशान की पहरी भी दी थी। [illegible] पुत्र रोहिताश्व को भी सत्य के [illegible] के कारण पुत्र [illegible] नहीं हुए थे। अन्त में भगवान शान्तिनाथ से इन्होंने [illegible] की और मोक्षगामी [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

दिया। उपसर्गों का नाम मात्र गिनाने के लिये भी एक दस्ता कागज चाहिए। देखो त्रि० श० पु० चरित्र भाग १० वाँ।

४६—भगवान पार्श्वनाथ—तक जो हमारे २३ वें तीर्थंकर हैं जैन-इतिहास सरलता से उपलब्ध है। फलितता अब अब ऐतिहासिक शोध भगवान् नेमिनाथ तक जाती है। इसके पूर्व का समस्त इतिहास अन्धकार में है। संभव है आगे जाकर पता लगे जा सके।

४७—गजसुकुमाल—ये ९ वें वासुदेव श्रीकृष्ण के छोटे भाई थे। इनके श्वसुर सोमशर्मा ने इनके शिर पर जब कि ये ध्यानस्थ कायोत्सर्ग में श्मशान क्षेत्र में खड़े थे, सजग अंगारे रख दिये थे। फिर भी आप ध्यानस्थ रहे और अन्त में अन्तकृत-केवली होकर आप मोक्ष-पद को प्राप्त हुए।

४८—मेतार्यमुनि—ये परम दयालु थे। आपने अपने प्राण देकर भी क्रौंच की पुकार करने वाले क्रौंच पक्षी की प्राण-रक्षा की थी।

४९—कपिला पुत्र—ये बड़े समझदार थे। एक कपिल ने आपको राजा की उद्यान में बैठ दिया था जब कि आप उस में बैठे हुए फल तोड़ कर खा रहे थे। परन्तु आपने इस पर कपिल को कायल नहीं किया। अन्त में आप अन्तकृत-केवली होकर आप मोक्ष गये।

५०—[illegible]—ये बड़े [illegible] थे [illegible] में आपकी बड़ी [illegible] थी, [illegible] आपके [illegible] भी

४७—वसुदाचार्य—ये प्रखर तेजवन्त आचार्य थे। आपने अनेक बौद्ध विद्वानों को शास्त्रार्थ में निरुत्तर किया था। आपने प्रखर बौद्ध विद्वान् बहुकर को शास्त्रार्थ में हराया था। मृगुकच्छ नगर में अब भी एक गौतम बुद्ध की अर्धनमित मूर्ति है। कहते हैं कि इस बुद्ध मूर्ति ने वसुदाचार्य के आदेश पर उन्हें वंदन किया था।

४८—वर्धमानसूरि—ये श्रुतज्ञान के धारी महा तेजस्वी आचार्य थे। आपने लाखों हिन्दुओं को अहिंसक बनाया था। नरवाल के अलावा आया हुआ भीमलपुर एक समय परम-हिंसक था। आपने ही उस समस्त नगर को तथा वहाँ के राजा उदयसेन को जैन बनाया था। भीमल (एक जैन जाति) भीमाल-पुर से ही जैन बने थे। आबाद बंग को भी आपने ही जैन बनाया था, जो अब जैन पोरवाल जाति के नाम से विख्यात है।

४९—राजसूरि—आपने मारवाड़ प्रान्त अन्तर्गत आई हुई कोमिल नगरी के निवासियों को जिनका पूर्व नाम उपकेशपुर था जैन बनाया था। नगर में कोमिला नगरी के निवासी कोमल कहलाते हैं।

५०—कनिष्कसूरि—ये दशपूर्वी के ज्ञाता थे, पाँच महाव्रती आचार्य थे। इनके काल में रेगिस्तान प्रदेशों में, जहाँ जैन इनके लिये जाते थे होते थे

५१—हरिसेनसूरि—ये पाँच तेजस्वी आचार्य थे; इनके समय में बारह वर्ष का अकाल पड़ा था। आपने लोहार नगर के निवासी कोई जिनदत्त की को जैनधर्म में

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

'आवश्यकलघुवृत्ति' नाम का ग्रन्थ लिखा है। 'दशवैकालिक-सूत्र' पर भी टीका लिखी है।

६६—द्रोणाचार्य—इन्होंने 'ओघनिर्युक्ति' पर टीका लिखी है।

७०—मलधारी आचार्य—इन्होंने पद्म चरित्र (जैन रामायण) सौहीस हजार श्लोकों में लिखा है। ये विक्रम चतुर्थ शती में विद्यमान थे। भृगुकच्छ में आपने बौद्धाचार्यों को शास्त्रार्थ में परास्त किया था अतएव आपको 'वादी' पद दिया गया।

७१—गुणाचार्य—ये महान पण्डित थे। इन्होंने प्रसिद्ध औदलका की विद्वत्परिषद् को भी दर्शनशास्त्रार्थ में परास्त किया था।

७२—शीलाचार्य—ये भी प्रखर शास्त्र पारंगत थे। इन्होंने अणहिलपुर में सिद्धराज की राजसभा में बौद्धाचार्यों को शास्त्रार्थ में परास्त किया था।

७३—जिनेश्वरसूरि—ये महान विद्वान् थे। ये [illegible] में हुए हैं। इन्होंने [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] ग्रन्थ लिखे हैं।

७४—[illegible]—ये [illegible] थे। इन्होंने [illegible] [illegible] [illegible]

उसके पर आहार ग्रहण करते हुए कहा कि अब कल से सुकाल होगा और ऐसा ही हुआ।

६२—रत्नशेखरसूरि—प्रबल जैन विद्वान थे। आपने 'श्रीपाल-चरित्र' तथा गुणस्थानक्रमारोह' नामक अनेक उत्तम ग्रन्थ लिखे हैं। बादशाह फिरोज तुगलक आपका बड़ा सम्मान करता था।

६३—चन्द्रसूरि—ये आचार्य मागधी भाषा के प्रगाढ़ पण्डित थे। इन्होंने मागधी में संग्रहणी नाम का ग्रन्थ लिखा है। आपने 'निर्यावली सूत्र' पर भी टीका लिखी है। ये आचार्य तेरहवीं शताब्दी में हुए हैं।

६४—प्रसन्नचन्द्र राजर्षि—ये महान आचार्य हो चुके हैं। इन्होंने अपना राज्य अपने छोटे भाई को देकर दीक्षा ली थी।

६५-६६—कालिकाचार्य व राजा गर्दभिल्ल—राजा गर्दभिल्ल उज्जैन का राजा और प्रसिद्ध विक्रमादित्य का पिता था। इसने सरस्वती नाम की साध्वी को जो अति सुन्दर थी और तृतीय कालिकाचार्य की बहन थी पकड़ कर अंतःपुर में डाल दी। निदान कालिकाचार्य ने आचार्य वेष को परित्यक्त कर अनार्य देश में से सेना संग्रहीत की। राजा को परास्त कर साध्वी के शील की रक्षा की और उसे राजा के चंगुल से मुक्त की।

६७—इन्द्राचार्य—इन आचार्य ने 'योगविधि' नामक अद्भुत ग्रन्थ लिखा है।

६८—तिलकाचार्य—ये महान प्रसिद्ध आचार्य थे। इन्होंने

समकालीन है। आपने भी राजा भोज के विद्वद्गणों को निरुत्तर कर दिया था। अतएव राजा भोज ने आपको 'वादी वेताल' की उपाधि प्रदान की थी।

८२—सप्पभट्टाचार्य—इन्होंने मथुरा के राजा आम को जैन-धर्मी बनाया था। आम राजा दुराचारी और स्त्रीलंपट था। आम राजा ने ज्योंहि जैनधर्म स्वीकार किया कि सारी मथुरा नगरी जो शैव थी जैन धर्मानुयायी बन गई।

८३—जिनदत्तसूरि—ये खरतरगच्छ के महा प्रसिद्ध आचार्य हो चुके हैं। आज भी स्थान २ पर आपके नाम से दादा-वाड़ियें मौजूद हैं। आपने जैनधर्म का अतिशय विस्तार-प्रचार किया था। ये आचार्य १२ वीं शती में हुए हैं।

८४—जिनकुशलसूरि—ये खरतरगच्छ के आचार्य थे। आपने 'चैत्यवंदनकुलकवृत्ति' नाम का ग्रंथ लिखा है।

८५—जिनप्रभसूरि—ये प्रगाढ़ विद्वान थे। इनका ऐसा नियम था कि प्रत्येक दिन कोई नव स्तोत्र, सूत्र रच कर ही अन्न-जल ग्रहण करना। इन्होंने 'द्व्याश्रय महाकाव्य' लिखा है। इनका काल १४ वीं शती है।

८६—चन्द्रकीर्तिसूरि—इन्होंने 'सारस्वतव्याकरण' पर 'चन्द्रकीर्ति' नाम की टीका लिखी है।

८७—प्रभाचन्द्रसूरि—ये आचार्य १४ वीं शती में हुए हैं। इन्होंने 'प्रभाविक चरित्र' नामक ऐतिहासिक ग्रंथ लिखा है।

८८—आर्य आशाधर—ये संस्कृत के [illegible] थे। इन्होंने 'धर्मामृतानन्दकारिका' नामक [illegible] का ग्रंथ लिखा है।

समकालीन है। आपने भी राजा भोज के विद्वद्गणों को निष्प्रभ कर दिया था। अतएव राजा भोज ने आपको 'वादी वेताल' की उपाधि प्रदान की थी।

८२—बप्पभट्टाचार्य—इन्होंने मथुरा के राजा आम को जैन-धर्मी बनाया था। आम राजा दुराचारी और स्त्रीलंपट था। आम राजा ने ज्योंहि जैनधर्म स्वीकार किया कि सारी मथुरा नगरी जो शैव थी जैन धर्मानुयायी बन गई।

८३—जिनदत्तसूरि—ये खरतरगच्छ के महा प्रसिद्ध आचार्य हो चुके हैं। आज भी स्थान २ पर आपके नाम से दादा-वाड़ियें मौजूद हैं। आपने जैनधर्म का अतिशय विस्तार-प्रचार किया था। ये आचार्य १२ वीं शती में हुए हैं।

८४—जिनकुशलसूरि—ये खरतरगच्छ के आचार्य थे। आपने 'चैत्यवंदनकुलकवृत्ति' नाम का ग्रंथ लिखा है।

८५—जिनप्रभसूरि—ये प्रगाढ़ विद्वान थे। इनका ऐसा नियम था कि प्रत्येक दिन कोई नव स्तोत्र, सूत्र रच कर ही अन्न-जल ग्रहण करना। इन्होंने 'द्व्याश्रय महाकाव्य' लिखा है। इनका काल १४ वीं शती है।

८६—चन्द्रकीर्तिसूरि—इन्होंने 'सारस्वतव्याकरण' पर 'चन्द्रकीर्ति' नाम की टीका लिखी है।

८७—प्रभाचन्द्रसूरि—ये आचार्य १४ वीं शती में हुये हैं। इन्होंने 'प्रभाविक चरित्र' नामका ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा है।

८८—आर्य आशाधर—ये संस्कृत के प्रख्यात पण्डित थे। इन्होंने 'कुवलयानन्दकारिका' नामक अलङ्कार का ग्रन्थ लिखा है।

अधिक बिक गई और अपने पति को ऋण-मुक्त किया। देखो 'हरिश्चन्द्रराम'।

१५—तारा—यह राजकुमार कनक की बहिन थी। यह बचपन में ही अपने परिवार से बिछुड़ गई थी। इसने अनेक संकट सहन किये थे।

१६—कुसुमबाला—यह भी महा सती थी। इसने अपने शील की रक्षा करने के लिये बड़े-बड़े संकटों को सहन किया था।

१७—सुभद्रा—अपने शील के प्रभाव से इसने चलनी में दूर में से पानी निकाल कर बढ़ते हुये जल-प्रवाह को छिटक कर शान्त किया था। यह चंपानगरी—निवासी श्रेष्ठि सुत बुद्धदास की स्त्री थी।

१८—शिवा—चरहस्योत की रानी और चेटक राजपति की पुत्री थी। इसने नगरी में लगती हुई प्रबल अग्नि को अपने शील के प्रभाव से शमन की थी।

१९—कलावती—शंख नृपति की रानी थी। एक समय राजा ने मिथ्या शंका से कलावती के दोनों हाथ कटवा दिये। लेकिन कदमा अपने शील के प्रभाव से कलावती के दोनों हाथ पूर्ववत् हो गये।

१०—[illegible]—इसका [illegible] है। यह [illegible] की पुत्री थी। [illegible] की और [illegible] की सुयोग्य शिष्या थी। [illegible] का [illegible] [illegible] के ही हाथ पूर्ण हुआ था। इसने [illegible] में [illegible] सहन किये [illegible] हो [illegible] सती

ने पत्नी देखकर यह जिह्वा छेद कर पंचत्वगति को प्राप्त हुई थी।

१०७—मदनरेखा—यह राजा युगबाहु की पतिपरायणा रानी थी। युगबाहु को इसके देवर मणिरथ ने मार डाला था और इसे इसकी प्रिया बनने के लिये अनेक प्रलोभन व संकट दिये थे। अन्त में यह प्रासाद छोड़कर भाग निकली थी और दीक्षा ग्रहण कर चारित्र पालने लगी थी।

१०८—नर्मदा—यह महेश्वरदत्त की पतिव्रता स्त्री थी। इसने आचार्य मुनिचन्द्र के पास दीक्षा ग्रहण की थी।

१०९—सुसीमा—यह परमात्मा महिला थी। इसके वत्सीम पुत्रों का मरण एक साथ हुआ था, लेकिन यह उनके मरण पर तनिक भी शोकातुर नहीं हुई थी। और अपने पति को धर्म का उपदेश देकर उसे इसने शोकसागर में डूबने से उबारा। अन्त में इसने भी दीक्षा लेकर चारित्र धर्म का पालन किया।

११०—सुमंगला—यह मोहदत्त सामुद्रिक की पतिपरायणा पत्नी थी। इसके शील की परीक्षा देवों ने अनेक प्रकार से ली, लेकिन यह परीक्षा में खरी उतरी। अन्त में इसने भी दीक्षा लेकर चारित्र धर्म का पालन किया।

१११—कमला—यह हनुमान की माता और पवनकुमार की पतिव्रता पत्नी थी। कमला की कथा बड़ी मार्मिक है।

११२—कमलश्री—यह [illegible] की पुत्री [illegible] की पतिपरायणा पत्नी और [illegible] की माता थी। इसने भी दीक्षा लेकर चारित्र धर्म ग्रहण किया था।

'सत्य' और 'अहिंसा' में ही किये हैं और समस्त संसार को भी आपका यही उपदेश है। संसार भले प्रकार जानता है कि जैन धर्म के भी मुख्य सिद्धान्त सत्य और अहिंसा ही हैं।

१२१—'यह निर्विवाद सिद्ध है कि बौद्धधर्म के प्रवर्तक गोतमबुद्ध से पहिले जैनियों के तेवीस तीर्थंकर हो चुके हैं।' यह प्रसिद्ध विद्वान् डेविड साहब ने एनसाईक्लोपीडिया ब्याहा-ल्यूम २६ में लिखा है। ऐसा ही अनेक यूरोपीय विद्वानों का मत है। अब तो हमारे देशभाई भी ऐसा मानने लगे हैं।

१२२—देखो 'जैन जातिमहोदय' प्रथम प्रकरण (मुनि ज्ञानसुन्दरजी विलिखित)

(अ) यजुर्वेद—ॐ नमोऽर्हन्तो ऋषभो।

(ब) यजुर्वेद—ॐ रक्ष रक्ष अरिष्टनेमि स्वाहा।

(अध्याय २६)

(स) श्री ब्रह्माण्डपुराण—

नाभिस्तु जनयेत्पुत्रं. मरुदेव्यां मनोहरम्।
ऋषभ क्षत्रियश्रेष्ठ. सर्वक्षत्रस्यपूर्वकम्॥

(द) मनुस्मृति—कुलादि बीजं सर्वेषा प्रथमो विमलवाहन।
चक्षुष्मांश्च यशस्वी चाभिचन्द्रोथ प्रसनेजित॥

(इ)—महाभारत में श्रीकृष्ण भगवान् क्या कहते हैं—

'आरोहस्व रथे पार्थ गांडीवंच कदे गुरु।
निर्जिता मेदिनी मन्ये निर्ग्रन्था यादि

१२३.....'परन्तु इस घोर हिंसा
से जाने का श्रेय जैनधर्म ही के हिस्से में है।'

केवल महावीर तक २३ तीर्थंकर अपने-अपने समय में अज्ञान तीर्थी का तीव्रान्धकार नाश करते थे।" के. आचार्य सुब्रह्मण्यम्, रामी लट्टू डी० एल० पी० एच० डी० इत्यादि दोनों प्रकार के कालेज बनारस ने 'सनातन महाविद्यालय काशी के दशम वार्षिक उत्सव के अवसर पर अपने व्याख्यान में कहे हैं। जैन शास्त्र महादेव ३० प्रकाश।

१८८— "पार्श्वनाथ एक ऐतिहासिक व्यक्ति हो गये हैं। इसमें कोई शंका नहीं है। जैन शास्त्रानुसार उनकी आयु १०० वर्ष की थी और महावीर से २५० वर्ष पूर्व उनका निर्वाण हुआ है। इस प्रकार पार्श्वनाथ ईसा से आठ शताब्दि पूर्व उत्पन्न हुए सिद्ध होते हैं। महावीर के माता पिता पार्श्वनाथ के धर्मानुयायी थे।" ये जैन तीर्थंकर का वर्णन है। "वास्तव हिन्दुस्तान के हैलेण्ड" नामक इतिहास पृ० ११ से उद्धृत (जै० सिद्धान्त पृ० चन्द्र तक)।

१८९— "भगवान् है जैन धर्म और उनके आदिम धर्म आचार्य हैं। जो लोग ये कहते हैं कि महावीर स्वामी ही जैन धर्म के प्रवर्तक थे।" के लेख सम्प्रदायों के अपने २ मत के विरुद्ध है।

१९०—१९१ —[illegible] जैन-धर्म [illegible] के [illegible] और [illegible] के [illegible] काशी के [illegible] और [illegible] है।

१९२-१९३—[illegible] [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]

थे और साढ़े नव पूर्व के ज्ञाता थे। धर्म-देवलोक का इन्द्र भी इनके तप, तेज को देखकर उनका परम अनुचर बन गया था।

११७—इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सौधर्म, मण्डित, मौर्यपुत्र, अकम्प, अचलभ्राता, मेतारज और प्रभास ये ११ गणधर महावीर के गणधर थे। ये सब ही प्रकाण्ड पण्डित व विद्वान थे। जैन-धर्म के सब शास्त्र इन ११ गणधरों ने लिपिबद्ध किये हैं।

११८—हेमचन्द्राचार्य—ये संस्कृत प्राकृत के अद्वितीय विद्वान थे। इन्होंने संस्कृत में ३६० ग्रन्थ लिखे हैं। 'सिद्धहैमशब्दानुशासन' इनकी ही रचना हुआ है। एक बार इन्होंने सरस्वती की प्रत्यक्ष-मूर्ति को भी अपने शब्दों का स्मरण करवाया था।

११९—[illegible] ये [illegible] हैं। ये वि० [illegible] के विद्वान थे। इन्होंने [illegible] [illegible] हैं। [illegible] [illegible] हैं।

१२०—[illegible] [illegible] [illegible] [

केवल महावीर तक २३ तीर्थंकर अपने-अपने समय में सद्धर्म तीर्थों का जीर्णोद्धार सदा करते थे।" ये वाक्य तुकाराम[illegible] शास्त्री बी० ए० पी० एच० डी० इत्यादि प्रोफेसर कॉलेज कलकत्ता ने 'देवाधिदेव महाविद्यालय काशी के दशम वार्षिकोत्सव के अवसर पर आये व्याख्यान में कहे थे। जै० सं० सन्देश ४० प्रकाश।

१०८—"पार्श्वनाथ एक ऐतिहासिक व्यक्ति हो गये हैं। इसमें कोई शंका नहीं है। जैन शास्त्रानुसार उनकी आयु १०० वर्ष की थी और महावीर से २५० वर्ष पूर्व उनका निर्वाण हुआ है। इस प्रकार पार्श्वनाथ ईसा से आठ शताब्दि पूर्व उत्पन्न हुए सिद्ध होते हैं। महावीर के बाद जैसा पार्श्वनाथ के धर्मानुयायी के रूप में एक विशिष्ट का अस्तित्व है। इसका हिन्दुस्तान में हैं[illegible] [illegible] पृ० १२ से उद्धृत (डॉ० विनयलाल जैन अन्य ग्रन्थ)।

१०९—[illegible] जैन धर्म और अन्य धार्मिक [illegible] [illegible] है [illegible] जैन के रूप में [illegible]।

११०—[illegible] पार्श्वनाथ [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible]

१११—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

११२—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

मुगल सम्राट् जहांगीर के समय में भी हो चुके हैं। ये भी बड़े विद्वान आचार्य थे और इन्हें 'वादी' की उपाधि थी।

१४७—हेमचन्द्रसूरि—ये प्रसिद्ध आचार्य अभयदेव सूरिजी के शिष्य थे। ये १२ वीं सदी में हुए हैं। इन्हें 'मल्लधारी' की उपाधि राजा सिद्धसेन ने अर्पण की थी। इन्होंने जीव-समास, भवभावना, शतकवृत्ति, उपदेशमालावृत्ति' आदि अनेक अमूल्य ग्रन्थ लिखे हैं।

१४८—हरिभद्रसूरि—ये आचार्य भी संस्कृत के अजोड़ विद्वान थे। ये विक्रम की छठी शती में हो गये हैं। इन्होंने कुल मिलाकर १४४४ ग्रन्थ लिखे हैं। जंबूद्वीप-संग्रहणी, दशवैकालिक-वृत्ति, ज्ञानचन्द्रिका, लग्नकुण्डलिका योगदृष्टिसमुच्चय, पंचसूत्र-वृत्ति इत्यादि।

एक इसी नाम के आचार्य १२ वीं शताब्दि में भी हो गये हैं। ये भी बड़े शक्तिधर आचार्य थे। इन्हें लोग कलिकालगौतम कहते हैं। इन्होंने भी 'तत्त्वप्रबोधादि' अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

१४९—सोपाल—यह सौराष्ट्रपति राजा सिद्धसेन के समय में हुए हैं। ये महाकवि थे और राजा इनका बड़ा सम्मान करता था।

१५०—धनपाल—ये बड़े आशुकवि और विद्वान थे।

१५१—धनञ्जय—इस नाम के एक महाकवि विक्रम की ६ ठी शती में हो गये हैं। इन्हें समस्त संस्कृत-साहित्य-संसार जानता है। इनके बनाये हुए अनेक ग्रन्थ अति प्रसिद्ध हैं। 'द्विसंधानमहाकाव्य' जिसके प्रत्येक श्लोक में दो-दो कथाओं का

पुनः इन्होंने समस्त जैन साधुओं को पुनःसंगठित किया। इनके समय में केवल एक पूर्व का ज्ञान रह गया था।

[illegible]—[illegible] में पाटलीपुत्र में। इन्होंने [illegible] निर्वाणकलिका तथा प्रतिष्ठासार नामक [illegible] ग्रन्थ लिखा है। [illegible] इन्हें [illegible] का [illegible] आचार्य के [illegible] माना जाता है। [illegible] इनका इन्द्र बड़ा गर्वी था। [illegible] आचार्य [illegible] [illegible] किया। [illegible] आचार्य ने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

मुगल सम्राट् जहांगीर के समय में भी हो चुके हैं। ये भी बड़े विद्वान आचार्य थे और इन्हें 'वादी' की उपाधि थी।

१४७—हेमचन्द्रसूरि—ये प्रसिद्ध आचार्य अभयदेव सूरिजी के शिष्य थे। ये १२ वीं सदी में हुए हैं। इन्हें 'मलधारी' की उपाधि राजा सिद्धसेन ने अर्पण की थी। इन्होंने जीव-समास, भवभावना, शतकवृत्ति, उपदेशमालावृत्ति' आदि अनेक अमूल्य ग्रन्थ लिखे हैं।

१४८—हरिभद्रसूरि—ये आचार्य भी संस्कृत के अजोड़ विद्वान थे। ये विक्रम की छठी शती में हो गये हैं। इन्होंने कुल मिलाकर १४४४ ग्रन्थ लिखे हैं। जंबूद्वीप-संग्रहणी, दशवैकालिक-वृत्ति, ज्ञानचन्द्रिका, लग्नकुण्डलिका योगदृष्टिसमुच्चय, पंचसूत्र-वृत्ति इत्यादि।

एक इसी नाम के आचार्य १२ वीं शताब्दि में भी हो गये हैं। ये भी बड़े शक्तिधर आचार्य थे। इन्हें लोग कलिकालगौतम कहते हैं। इन्होंने भी 'तत्त्वप्रबोधादि' अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

१४९—गोपाल—यह सौराष्ट्रपति राजा सिद्धसेन के समय में हुए हैं। ये महाकवि थे और राजा इनका बड़ा संमान करता था।

१५०—परिमल—ये बड़े भावुक कवि और विद्वान थे।

१५१—धनंजय—इस नाम के एक महाकवि विक्रम की ९ वीं शती में हो गये हैं। इन्हें समस्त संस्कृत-साहित्यिक-संसार जानता है। इनके बनाये हुए अनेक ग्रंथ अति प्रसिद्ध हैं। 'द्विसंधानमहाकाव्य' जिसके प्रत्येक श्लोक से दो-दो कथाओं का

अर्थ निकलता है तथा 'धनंजयनाममाला' आपके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं।

१५२—वज्रस्वामी—इनकी स्मरण-शक्ति बड़ी प्रबल थी। आठ वर्ष की आयु तक इन्होंने श्रवणमात्र से ११ अंगों का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया। परमपूज्य आचार्य सिंहगिरि के पास इन्होंने दीक्षा व्रत ग्रहण किया। ये १० पूर्व के ज्ञाता और वैक्रियलब्धि-धर थे। इनका स्वर्ग-गमन महावीर सं० ५८४ में हुआ।

१५३—अकलंक—ये प्रसिद्ध शास्त्रज्ञ थे। इन्होंने अनेक बौद्धों को शास्त्रार्थ में पराजित किया था और जैन-धर्म की अतिशय उन्नति की।

१५४—वाग्भट—ये महाकवि थे। वाग्भटालंकारटीका, नेमिनिर्माणकाव्य, काव्यानुशासनटीका इनके ये दो ग्रंथ हैं। संस्कृत-साहित्य-जगत् में इनका सम्मान महाकवि कालिदास के समतुल्य है।

१५५—धनपाल—महाकवि धनपाल महाकवि कालिदास के समकालीन हैं। 'तिलकमंजरी' जो कादम्बरी के जोड़ का ग्रन्थ है आपने लिखा है।

१५६—श्रीपाल—ये प्रसिद्ध विद्वान हो गए हैं। आपने भी संस्कृत में अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

१५७—समन्तभद्र—ये कर्नाटक संस्कृत एवं प्राकृत के पंडित थे। इन्होंने अनेक पंडितों को शास्त्रार्थ में जीता था। इनकी बुद्धि बड़ी विलक्षण थी। ये क्षत्रु (मालवाड़) के रहने वाले थे।

१५८—प्रभाचन्द्राचार्य—ये आचार्य श्रीमद् जयपुरि के शिष्य

[illegible]

[illegible]

[illegible]

इन्होंने लगभग १०० ग्रंथों की रचना की है। ये १७ वीं शती में हुए हैं। 'ज्ञान बिंदुप्रकरण, ज्ञानसार, नयप्रदीप, अध्यात्मसार द्रव्यानुयोग तर्कना, प्रतिमाशतक' आदि इनके अनुपम ग्रंथ हैं।

१६३—राजेन्द्रसूरि—ये महान् आचार्य अभी हो गये हैं। इनका जन्म सं० १८८३ में हुआ था। इन्होंने एक 'अभिधान-राजेन्द्र-कोष' लिखा है जो सात भागों में छपकर तैयार हुआ है। दुनियां के समस्त सर्वश्रेष्ठ विद्याप्रेमियों ने इस ग्रन्थ की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। आपको कलिकालसर्वज्ञ माना जाता है। आपकी जीवनी छप चुकी है।

१६४-६५—जयसलमेर (राजपुताना), पाटण (अणहिल-पुर) में अति प्राचीन जैन-भण्डार हैं। इनमें सैकड़ों हस्तलिखित ग्रन्थ अब भी मौजूद हैं। कोई-कोई ग्रन्थ ७-८ वीं शताब्दि के भी बताये जाते हैं। लेकिन दुःख है कि इनको आज हमारी अवहेलना और अधोगति के कारण, कृमि, दीमक खा रहे हैं।

१६६—चौदह पूर्व—उत्पाद (उत्पाद), अग्रेणीय (अग्राणीय) आदि १४ पूर्व कहे जाते हैं। ये पूर्व सबसे अधिक प्राचीनतम हैं। दुःख है कि ये चौदह ही पूर्व कभी के लुप्त हो चुके हैं।

१६७—द्वादशिकवत्सरदुष्काल—मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त के समय में १२ वर्ष का लम्बा एक भयंकर दुष्काल पड़ा, जिसमें कतिपय विद्वान ऐसा मानते हैं कि जैन-शास्त्रों का सर्वथा लोप हो गया। जितना अंश कंठस्थ रहा वह फिर लिखा गया।

१६८—वेद—जैन-साहित्यावलोकन से ऐसा प्रतीत होता है

कि वेदों की रचना भगवान् आदिनाथ के समय उनके गणधरों ने की थी।

१६९—जैन-दर्शन—जैन-दर्शन की महत्ता आज समस्त संसार स्वीकार करता है। सर्व श्री बालगंगाधर, गोखले, महामना मालवीयजी, तुकारामकृष्ण शर्मा आदि के विचार हम पूर्व दे चुके हैं।

१७०—जैन-साहित्य में यह हजारों वर्षों पूर्व ही बता दिया गया था कि वनस्पतिकाय में जीव होता है। लेकिन आज तक संसार हमारे इस सिद्धान्त का उपहास करता आया है। लेकिन अब-अब विज्ञान-विद् कहने लगे हैं कि वृक्ष-लताओं में जीव होता है। उसे भी मनुष्य अथवा पशु-पक्षी कृमि के जीव के अनुसार दुःख, सुख का अनुभव होता है। अभी कुछ वर्ष पूर्व हमारे प्रसिद्ध विज्ञानज्ञ जगदीशचन्द्र बोस ने ही सर्व प्रथम यह सिद्ध कर संसार को चकित कर दिया था कि वृक्ष हँसता, खेलता एवं रोता है। इस विषय में ये अधिक शोध करते लेकिन दुःख है अब उनका देहावसान हो चुका है।

१७१—अंग—आयार (आचार), सूयगड़ (सूत्रकृत), थाण (स्थान) इत्यादि कुल १२ अंग हैं जिनमें दृष्टिवाद अंग पूर्व के साथ ही विलुप्त हो गया है ऐसा माना जाता है। थोड़े में अंगों का विषय यहाँ स्पष्ट नहीं किया जा सकता।

१७२—उपांग—ओववाइय (औपपातिक), रायपसेनइज्जि (राजप्रश्नीय), जीवाभिगम आदि उपांग भी १२ हैं। उपांगों का अंगों के साथ अवश्य गुप्त सम्बन्ध है।

१७३—पयन्ना—चउसरण (चतुःशरण), आउर पच्चक्खाण (आतुरप्रत्याख्यान), भत्तपरिण्णा (भक्तपरिज्ञा) इत्यादि १० पयन्ना ग्रन्थ हैं।

१७४—छेद-सूत्र—निसीह (निशीथ), महानिसीह (महानिशीथ) ववहार (व्यवहार) इत्यादि छह छेद-सूत्र हैं।

१७५—चार मूलसूत्र—उत्तराज्झयण (उत्तराध्ययन), आवस्सय (आवश्यक) इत्यादि चार मूल सूत्र हैं।

नंदी सुत्त (नंदीसूत्र), अणुयोगदारसुत्त (अनुयोगद्वार सूत्र) ये दो चूलिका-ग्रन्थ हैं।

१७६—गोमटसार—यह एक अमूल्य धार्मिक ग्रन्थ है। इसका सर्वत्र जैन समाज में बड़ा आदर पाता सनातन धर्मावलम्बियों में सम्मान है।

१७७—नवतत्त्व—यह ग्रन्थ अध्यात्मग्रन्थ है। जैन सिद्धान्त में नवतत्त्व माने हैं और इस ग्रन्थ में इनका बड़ा सुन्दर विवेचन किया गया है।

१७८—तत्त्वार्थाधिगमसूत्र—इस ग्रन्थ के रचयिता श्रीमद् उमास्वातिवाचक हैं। इसका जैन-दर्शन में ही नहीं सर्व भारतीय दर्शनों में एक विशिष्ट स्थान है।

१७९—नय आरसा—यह एक धार्मिक ग्रन्थ है। इसके कर्ता श्रीमद् विद्वान मल्लवादी क्षमाश्रमण हैं।

१८०—ॐ पाकुन्नयन—यह भी धार्मिक ग्रन्थ है।

१८१—पुण्यसार—यह भी धार्मिक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में धार्मिक उपदेशकथा, कहानी का प्रकाश डाला है।

१८२—द्वादशकुलक—यह भी एक धार्मिक ग्रन्थ है।

१८३—निर्वाणकलिका—यह भी एक धार्मिक ग्रन्थ है। यह आचार्य पादलिप्तसूरि-कृत है।

१८४—भावसंग्रह—यह भी धार्मिक ग्रंथ है। यह देवसेन भट्टारक का बनाया हुआ है।

१८५—सप्तभंगी न्याय—यह न्याय का उच्चकोटि का ग्रन्थ है। इसका सर्वत्र अतिशय सम्मान है। ऐसे ग्रन्थ न्याय-विषय में अति थोड़े हैं।

१८६—स्याद्वादरत्नाकर—यह न्याय का अद्भुत ग्रन्थ है। इसके रचयिता प्रसिद्ध आचार्य वादिदेवसूरि हैं। यह ग्रन्थ १२ वीं शती में लिखा गया था

१८७—न्यायालोक—यह भी न्याय विषय का बृहद् ग्रंथ है।

१८८—प्रमेयकमलमार्तण्ड—जैन-दर्शन का यह बहुत ही विशिष्ट और उच्चकोटि का न्याय ग्रंथ है यह प्रभाचन्द्राचार्य-विरचित है।

१८९—पुराण—हरिवंशपुराण [illegible] है। इन सबमें जैन-इतिहास [illegible]

१९०—त्रिषष्टिशलाकापुरुष-चरित्र—यह [illegible] हेमचन्द्राचार्यकृत है इसमें २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ वासुदेव, ९ प्रतिवासुदेव और ९ बलदेव [illegible] १२ महापुरुषों का जीवन-चरित्र है

१९१—अर्हन्नीति—यह हेमचन्द्राचार्यकृत [illegible] का

१७३—पयन्ना—चउशरण (चतुःशरण), आउर पच्चक्खाण (आतुरप्रत्याख्यान), भत्तपरिण्णा (भक्तपरिज्ञा) इत्यादि १० पयन्ना ग्रन्थ हैं।

१७४—छेद-सूत्र—निसीह (निशीथ), महानिसीह (महानिशीथ) ववहार (व्यवहार) इत्यादि छह छेद-सूत्र हैं।

१७५—चार मूलसूत्र—उत्तरज्झयण (उत्तराध्ययन), आवस्सय (आवश्यक) इत्यादि चारमूल-सूत्र हैं।

नंदीसुत्त (नंदीसूत्र), अणुयोगदारसुत्त (अनुयोगद्वार-सूत्र) ये दो चूलिका-सूत्र हैं।

१७६—गोमटसार—यह एक अमूल्य धार्मिक ग्रन्थ है। इसका सर्वत्र जैन-समाज में ही नहीं प्रत्युत समस्त धर्म-संस्थाओं में सम्मान है।

१७७—नवतत्त्व—यह ग्रन्थ अवलोकनीय है। जैन विद्वानों ने नवतत्त्व माने हैं और इस ग्रन्थ में उनका बड़ा सुन्दर विवेचन दिया गया है।

१७८—तत्त्वार्थाधिगमसूत्र—इस ग्रन्थ के रचयिता प्रसिद्ध उमास्वातिवाचक हैं। इसका जैन-दर्शन में ही नहीं सर्व भारतीय दर्शनों में एक विशिष्ट स्थान है।

१७९—योग शास्त्र—यह एक धार्मिक ग्रन्थ है। इसके कर्ता प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य हेमचन्द्र सूरि हैं।

१८०—प्रश्नोत्तरमन—यह भी धार्मिक ग्रन्थ है।

१८१—गुणमाला—यह भी धार्मिक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में धार्मिक उपाख्यानों, कथाओं का प्रकाश संग्रह है।

प्रमुख ग्रन्थ है। राजा कुमारपाल के समय में इसी नीति के अनुसार शासन-सूत्र था।

११२—धर्माभ्युदय—यह उदयप्रभसूरिकृत महाकाव्य है।

११३-११४—विक्रान्तकौरव तथा मैथिलीकल्याण—ये दोनों उच्चकोटि के नाटक ग्रंथ हैं।

११५—पुरुदेवचंपू—यह महाकाव्य है। चंपू उच्चकोटि का है।

११६—यशस्तिलक—यह चंपू है और सोमदेव कृत है। यह ग्रन्थ ६वीं शती में लिखा गया था।

११७—शाकटायनव्याकरण—महर्षि शाकटायन वैयाकरण विरचित है जो पाणिनि से भी पूर्व हो चुके हैं। दुनिया इन्हें अब तक जैनेतर विद्वान् मानती थी लेकिन अब यह सर्व प्रकार सिद्ध होगया कि शाकटायन जैन थे। मद्रास कालेज के प्रोफेसर मी० गुस्ताव आपटे शाकटायन को जैन मानते हैं और पाणिनि से पूर्व इनकी उपस्थिति स्वीकार करते हैं। प्रसिद्ध ग्रन्थकार श्रीपदेव का भी ऐसा ही मंतव्य है।

११८—पातंजलि के पश्चात् प्रसिद्ध वैयाकरण आचार्य हेमचन्द्र ही माने जाते हैं। इनका बनाया हुआ व्याकरण साहित्य में अत्यधिक आदरणीय है।

११९—संस्कृत—संस्कृत से यहां अर्थ लौकिक-संस्कृत से है जो आदि प्राकृत का अन्यतम शुद्ध रूप कही जाती है।

२००—आदि-प्राकृत—आदि-प्राकृत से उस भाषा का अर्थ है जो अनार्यों के आगमन पर बनी। अर्थात् वैदिक-भाषा अनार्य भाषा के साथ मिलकर जिस स्वरूप को प्राप्त हुई वही

इसमें छोटे बड़े ८३ सौधशिखरी जैन-मन्दिर थे। प्रसिद्ध विद्वान मण्डन इसी नगर के रहने वाले थे। विस्तृत वर्णन के लिये देखो श्री यतीन्द्र-विहार-दिग्दर्शन भाग चतुर्थ पृ० १६६।

२१३—लक्ष्मणी-तीर्थ—यह तीर्थ अलिराजपुर स्टेट में आया है। इसके नाम से पता चलता है कि यह लक्ष्मण के समय में अगर नहीं था तो भी लक्ष्मण के नाम के पीछे अवश्य इसकी स्थापना हुई है। वैसे इसके भूगर्भ में से निकलती हुई वस्तुओं के अवलोकन से भी यह अति प्राचीन सिद्ध होता है। इस तीर्थ के स्थल को ज्यों-ज्यों खोदा जाता है, अनेक अद्भुत-अद्भुत वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं। देखो श्री० य० वि० दि० भा० ४ पृ० २३०।

२१४—अर्बुदगिरि—यह विशेष कर अभी आबू-पर्वत के नाम से प्रसिद्ध है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जैन-तीर्थ की दृष्टि से इसका इस समय भी कितना महत्त्व है। वस्तुपाल तेजपाल का बनाया हुआ जैन-मन्दिर अब भी अपनी प्रकृत दशा में ही विद्यमान है। अनेक यूरोपीय शिल्प-शास्त्री इस मन्दिर की शिल्प-कला देखकर दंग रह गये हैं। इस मन्दिर के बनाने में साढ़े बारह कोटि सुवर्ण मुद्रायें खर्च हुई थीं। ऐसा भव्य मन्दिर विश्व में भी अन्य कठिनतया ही उपलब्ध होगा।

२१५—गिरिनारपर्वत—यह जूनागढ़ के पास आया है। भगवान् नेमिनाथ की दीक्षा, उनको केवल ज्ञान और उनका निर्वाण इसी पावन गिरि पर हुआ है। यह तीर्थ मूलतः जैनियों

कला की दृष्टि से अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। दूसरी इसी गिरि में एक हाथी-गुफा भी है। यह गुफा प्राकृतिक है। डा० फर्ग्युसन लिखता है कि उदयगिरि की गुफाओं की भव्यता, शिल्प की लाक्षणिकता, और स्थापत्य की विगत ये सब इनकी प्राचीनता प्रमाणित करती हैं। देखो उ० हि० मौं० जैन धर्म पृष्ठ २२३। ये गुफायें कलिंगपति सम्राट खारवेल की बनवायी हुई हैं। इसमें ४४ गुफायें हैं।

२२०—खण्डगिरि—उदयगिरि की गुफाओं के पश्चिम में खण्डगिरि की १६ गुफायें हैं। ये भी सम्राट खारवेल की ही बनवायी हुई हैं। शिल्प की दृष्टि से इनका स्थान भी बहुत ऊँचा है। प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ एवं शिल्प विशारद आमोली, मनमोहन, चक्रवर्ती, ब्लोच, फरग्यूसन, स्मिथ, कुमार स्वामी आदि इन्हें जैन गुफा स्वीकार करते हैं। देखो उ० हि० मौं० जैन धर्म पृष्ठ २२२।

२२१—एलोर-अजन्ता गुफायें—अब तक सब इतिहासकार इन गुफाओं को बौद्ध गुफायें एक स्वर से बताते आये हैं, लेकिन अब ज्यों-ज्यों पुरातत्त्व वैज्ञानिक शोध करते जाते हैं उन्हें अब अपने प्राक्कथन में भ्रम होता है और कतिपय शिल्प-विशारद तो यह भी मानने लग गये हैं कि ये गुफायें भी जैन गुफायें हैं।

२२२—मथुरा—वर्तमान मथुरा नगर से ३-४ मील के अन्तर पर अभी कंकाली-टीला का पता लगा है और उसकी खुदाई भी हुई है। इस टीले में से ई० सन के पूर्व की जैन-मूर्तियें, आयागपट्ट, स्तूपखंड निकले हैं। महाक्षत्रपों के राज्य में मथुरा

कर्नाटक है यह बड़ा प्राचीन जनतीर्थ भी है जिसका जैन इतिहास की दृष्टि से भारी महत्त्व है।

१२३—मैसूर राज्यान्तर्गत बेलगोल में एक जैन मूर्ति ५७ फीट ऊँची है। इस मूर्ति की प्रतिष्ठा १० वीं शती में हुई है। इससे हमारी शिल्प-कला की उत्कृष्टता का तो पता लगता ही है लेकिन साथ में यह भी विचारने को मिलता है कि जैन-धर्म प्राचीन काल में दक्षिणी भारतवर्ष में भी समधिक रूप से फैला हुआ था। ऐसी ही एक जैन मूर्ति ५० फीट ऊँची आदिपुर नाम में भी है। वह भी अति प्राचीन है। देखो प्रा० भा० वर्ष का इतिहास आगे रा० पृ० १०३, १०४ पर।

१२४—यह सब को ज्ञात है कि यवन-आक्रमणकारियों ने भारतवर्ष पर कितने अत्याचार किए। इतिहास में इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश अनेक इतिहासज्ञ डाल चुके हैं।

१२५—[illegible] —[illegible] के [illegible] में भी [illegible] के [illegible] है [illegible] शिल्प-विशारद भी [illegible] है [illegible] [illegible] है, [illegible]

१२६—[illegible] में [illegible] के [illegible] आते हैं [illegible] [illegible] [illegible]

१२७—[illegible] यह [illegible] है [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible]

के कारण ही इस जाति के मनुष्य गंधर्व कहलाये। संगीत-विद्या का प्रथम प्रचार इसी जाति से हुआ है।

२३२—आस्ट्रेलिया में कुछ ऐसी मूर्तियाँ निकली हैं जिन्हें लोग बौद्ध-मूर्तियाँ कहते हैं। इसमें किसी का दोष नहीं कि वे मूर्तियाँ बौद्ध हैं या जैन। जब तक किसी भी परीक्षक, निरीक्षक को जैन-मूर्तियों के चिन्ह, लक्षण भली भाँति विदित न हों वह तो प्रत्येक ध्यानस्थ एवं कायोत्सर्गस्थ मूर्ति को बौद्ध ही कहेगा। लेकिन अब कोई-कोई लोग यह बात स्वीकार करते हैं कि किसी समय में जैन-धर्म दुनिया के अधिकांश भाग में महात्मा गौतम बुद्ध के पूर्व ही फैला हुआ था। अतः ढाई सहस्र पूर्व की प्रत्येक ऐसी मूर्ति या तत्त्व निर्विवाद रूप से जैन है।

२३३—यादववंश—भगवान श्रीकृष्ण हमारे ९ वें वासुदेव थे। इनके चचेरे भाई नेमिनाथ २२ वें तीर्थंकर थे और इनके अनुज गजसुकुमाल मुक्तकृत केवली थे। छप्पन कोटि यादव भी जैन थे, ऐसा हमारे ग्रंथों में प्रचुर प्रमाण मिलता है। [मेरी समझ में यहाँ कोटि का अर्थ कोई संख्या विशेष से न होकर गोत्र या शाखा से है।]

२३४—देखो नं० २। विशेष के लिये देखो दि० रा० पु० चरित्र (पु० भा) भाग १

२३५—भरत—यह भगवान ऋषभदेव का पुत्र था और प्रथम चक्रवर्ती हुआ है। यह गृहस्थ रहता हुआ भी जीवन्मुक्त था। एक समय किसी ने यह शंका की कि भरत चक्रवर्ती होकर कैसे जीवन्मुक्त हो सकता है। उस शंका का यह

भरत को मिला तो भरत ने उस आदमी को बुलाया और उ आदमी के हाथ में दही से भरा हुआ पात्र देकर कहा, "आ तुम समस्त शहर में यह पात्र अपने हाथ में लिये हुए भ्रम करके आओ; लेकिन यह ध्यान रखना कि एक बूंद भी अग दही का नीचे गिर पड़ा तो प्राणग्राहक तुम्हारा शिर वहीं प धड़ से अलग कर देंगे।"

जब वह आदमी समस्त नगर में भ्रमण करके लौटकर भर के पास आया तो भरत ने देखा कि दही में से एक बूंद भी नहं गिर पाई है। भरत ने उसे पूछा, 'भाई, तुमने नगर में क्य देखा और क्या सुना ?'

उस पुरुष ने उत्तर दिया, 'न मैंने कोई पुरुष या वस्तु देखी और न मैंने कुछ सुना ही। मेरी तो सब ही इन्द्रियें इसी पात्र पर लगी हुई थीं'। तब भरत ने उसे समझाया और कहा, 'भा मैं इस दहीपात्र के समान मोक्ष को देखता हुआ इस असार संसार के मध्य रहता हूँ।'

२३६—जब २४ वें तीर्थंकर भगवान महावीर का जन्म हुआ था उसी समय सुमेरुपर्वत हिल उठा और इन्द्र का सिंहासन भी डोल उठा। देखो त्रि० श० पु० चरित्र (गु० भा) भाग १० वां।

२३७—भरत चक्रवर्ती और बाहुबल का द्वन्द्व-रण विशु है। ये दोनों भगवान् ऋषभदेव के पुत्र थे। दोनों में राज्याधिकार के लिये विग्रह हो गया। जब दोनों ओर के विशाल जन-सैन्य रणाङ्गण में पहुँचे और युद्ध प्रारम्भ होने ही को था कि महामना बाहुबल ने भरत के समक्ष यह प्रस्ताव रक्खा कि राज्य प्राप्ति

के लिये निर्दोष जन-सैन्य का रक्त न बहा कर वह (बाहुबल) और भरत परस्पर द्वन्द्व-रण करें और जो जीते उसी को राज्य मिले। यह प्रस्ताव भरत ने सम्मत कर दिया और अन्त में बाहुबल विजयी हुए। लेकिन बाहुबल राज्य न लेकर वन में विरक्त होकर तपस्या करने चले गये और भरत को राज्याधिकार दे गये।

२३८—से २५१ देखो नं० १५ से २५ तक। विशेष वृत्त के लिये देखो त्रि० श० पु० चरित्र भाग १ से १० तक।

२५२—चन्द्रगुप्त मौर्य—यह नन्दवंश का उच्छेदक प्रख्यात अर्थशास्त्री चाणक्य का शिष्य था। सम्राट चन्द्रगुप्त इतिहास में प्रसिद्ध है। यहाँ विशेष उल्लेख की आवश्यकता नहीं है। इतना कहना पड़ेगा कि जहाँ अन्य इतिहासकार सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य को बौद्ध मानते हैं, वह जैन था और श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी का अनुयायी था।

२५३—सिल्यूकस—यह सिकन्दर महान् का सेनापति था। इसने भारत पर आक्रमण किया था, लेकिन सम्राट चन्द्रगुप्त के आगे इसकी कुछ न चली और निराश होकर लौटा। सिल्यूकस ने अपनी लड़की का विवाह सम्राट चन्द्रगुप्त के साथ करके सन्धि की थी।

२५४—सीलन—यह कोटिभट शीलाक के नाम से प्रसिद्ध है। इसने अपने जीवन में अनेक वीर कृत्य महान् किये थे। यह बड़ा वीर था, कहते हैं कि यह अकेला कोटि सुभटों से लड़ने को समर्थ था। इसकी पटरानी का नाम सेना सुन्दरी था।

मैना के शील के प्रभाव से ही श्रीपाल का कुष्ठ रोग शमन हुआ था। विशेष के लिये देखो श्रीपाल-रास या श्रीपाल-चरित्र (गुजराती में)।

२४४—राजर्षि उदयन—यह वीतभयनगर का राजा था। बड़ा प्रतापी था। इसने अनेक युद्ध किये और सबमें विजयी हुआ। अन्त में इसके मनमें वैराग्य उत्पन्न हो गया और अपने भागिनेय को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण करली।

२४५—सम्राट् श्रेणिक—यह मगध का सम्राट् था और भगवान् महावीर का परम भक्त था। इसके विषय में अनेक दन्तकथायें प्रसिद्ध हैं जिनका यहाँ वर्णन स्थानाभाव से असम्भव है। इसकी राजधानी वैभवगिरि राजगृह की गुफा थी और महाप्रतापी था।

२४६—नन्दिषेण—ये भगवान् महावीर के भाई थे और भगवान् के परमानुयायी थे। इसकी राजधानी राजगृह की कन्दरा थी। नन्दिषेण का सम्बन्ध प्रसिद्ध है।

२४७—राजगृह पर्वत यह बड़ा ही रमणीय पुण्यमय स्थान है। भगवान् आदीश्वर के समय में इसका मूर्त सम्बन्ध था। यह पर्वत जैन तीर्थ है। इसके आस पास की और आस पास में भी इसका आश्रय के अवशेष उन महान् राजाओं से विकट हुआ था। इसके कुछ महत्त्वपूर्ण हो गया था। इसके पत्थरों से जैन मन्दिर इस प्रकार बिखरे हैं कि [illegible] इसका वर्णन। इसके [illegible] यह [illegible] कि जैन [illegible] इसका [illegible] और [illegible] हुआ।

था। बागभट्ट और नागभट्ट दोनों भाइयों ने अपनी अलग आबू में दो अलग-अलग पृथक् किले थे। देखिये कुमारपाल चरित्र।

२६६—आसाराम आबू—यह अलाहिलपुर के महाराजा अमरपाल द्वितीय का सेनापति था और आसपास की रहने वाली था। इसने कितनी ही बार मुसलमान आक्रमणकारियों को पराजित किया था।

२६७—विमलशाह—यह गुजरात। अंगारक का महामंत्री था। यह बड़ा वीर और अद्वितीय धनुर्धारी था। इसने अनेक लड़ाइयाँ लड़ी थीं और आबू पर्वत पर एक विशाल जैन मंदिर बनवाया था।

२६८—रतनसिंह—यह औरंगजेब महाराज सिंहपाल का एक महामंत्री था। यह अद्वितीय वीर एवं नीति प्रवीण था। इसके चार पुत्र थे और चारों पुत्र यह रतनसिंह, रतनसिंह और इसके पुत्रों ने ही सिंहगढ़ का राज्य दृढ़ एवं अभेद्य सिद्ध किया था। इसी प्रकार रतनसिंह का चरित्र।

२६९—[illegible]—[illegible] भी [illegible] का [illegible] एक [illegible] था। [illegible] का [illegible] के [illegible] में [illegible] था।

[illegible]—[illegible] के [illegible] [illegible]।

[illegible]—[illegible]—[illegible]—[illegible] में और [illegible] के [illegible] था। [illegible] [illegible] के लिये [illegible] में [illegible] है। [illegible]

कुतुबशाह ने सौराष्ट्र विजय करने को अपनी प्रबल सेना भेजी। लेकिन इन दोनों भाइयों की तलवार का वार- तुर्क न सह सके और भाग खड़े हुए। ये वीर होने के साथ ही बड़े दानी एवं धर्मात्मा थे। इन दोनों भाइयों ने अपने जीवन काल में १३१३ नव्य जैन मन्दिर बनवाये। ३३०० जैन-मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया। ५०० पौषधशालायें बंधवाईं। सात कोटि सुवर्ण मुद्रायें खर्च कर पुस्तकें लिखवाईं और अगणित कुएँ, तालाब, धर्मशालाएँ, दानशालाएँ बनवाईं। पैसे का सदुपयोग ऐसा आज तक शायद ही किसी ने किया हो।

२७१—देखो नं० २७४।

२७२—भैरा-शाह—ये महा पराक्रमी एवं दानवीर शाह थे। ये नाडूल के रहने वाले थे। इनकी हवेली नाडूल में आज भी इनके वैभव की स्मृति करती है।

२७७—रामाशाह—ये भैरशाह के भाई थे। भूल से इनको भैंपाशाह का भाई कहा है। रामाशाह कितने पराक्रमी थे, निम्न पद्य से देखिये जो एक कवि ने इनकी प्रशस्ती में कहा है:—

सेवै कछवाहा, ओपक, जादौ, भारथ ओनै भीड भजा।
निरवाण, चौहान, चन्देल, सोलंकी, देवड़, निसाण, डिके दुजला॥
बड़गूजर, ठकुर, तेजर, दोनर, गौड, गहेल, महेल मिली।
दरबारि तुहारे रामनरेसुर सेवै राव दलीम कुली॥

जै० जा० म० प्र० पोथा।

२७८—को कर्मसी—निम्न पद्य से को कर्मसिंह का भी परिचय पा सकिये:—

सूर्य और चन्द्र भी पृथ्वी पर उतर आते थे और भगवान् का उपदेश श्रवण करते थे।

२८३—मदन राजर्षि—ये परमहंस महात्मा थे। इनके जीवन-चरित्र को पढ़ने से सच्ची अहिंसामय वृत्ति को पालन करने में कितने संकटों का सामना करना पड़ता है का पता मिलता है।

२८४—नं० ५० को देखिये।

२८५—सात सौ मुनि एक समय ध्यानस्थ थे कि दुष्टों ने उनके चारों ओर काँटे तृण डालकर अग्नि लगा दी, लेकिन धन्य है, सात सौ ही मुनि अडिग रहे और अन्त में धर्म की जय हुई।

२८६—धर्मरुचि मुनि को किसी श्रावक ने आहार में बहुत दिनों का कड़वी तुम्बी का रायता अर्पण किया। मुनिराज आहार लेकर अपने स्थान पर आये। जब आहार करने लगे तो पता पड़ा कि रायता अतिशय खट्टा है। आहार से निवृत्त होकर मुनिराज उस रायता को पात्र में लेकर बाहर अजीवाकुल स्थान पर प्रक्षेप करने गये। लेकिन उन्हें ऐसा कोई स्थान न मिला जहाँ किसी प्रकार का कोई जीवाणु न हो। निदान आप ही उसे पी गये और मोक्ष-पद को प्राप्त हुए। धन्य है ऐसे महामुनियों को।

२८७—ऐसा कहते हैं कि हमारे अन्दर ७४ राह ऐसे हो गये हैं जिनके समय दिल्ली-सम्राट की रिद्धि-सिद्धि अधिक थी और समय २ पर दिल्ली के बादशाह इन मंदिरों से कुछ उधार लेते थे। कहते हैं कि मंदिरों के आगे जो 'राह' पड़ता है वह किसी सम्राट का बनवाया हुआ है।

२८८—कानकेशि—ये बड़े प्रसिद्ध हैं। १६ करोड़

स्वर्ण-मुद्राओं के पति थे। इनके गोकुल में ४०००० गौएँ थीं। ये जहाजों द्वारा व्यापार करते थे। ये वाणिज्य ग्राम के निवासी थे और भगवान महावीर के मुख्य श्रावकों में थे।

२८९—सद्दालपुत्र—ये जाति के कुम्भकार थे। भगवान महावीर के मुख्य श्रावकों में थे। ये तीन करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं के अधिपति थे और इनकी दुकानें अनेक देशों में थीं। इनकी बड़ी २ दुकानें ५०० थीं।

२९०—महाशतक—ये भी भगवान महावीर के मुख्य श्रावक थे। ये २१ करोड़ स्वर्णमुद्राओं के स्वामी थे और इनके गोकुल में ८०००० गौएँ थीं। ये राजगृही के रहने वाले थे।

२९१—चुल्लणीशतक—ये भी भगवान महावीर के मुख्य श्रावक थे। ये १८ करोड़ स्वर्ण मुद्राओं के स्वामी थे। इनके गोकुल में ८००० गौएँ थीं।

२९२—जिनदत्तश्रेष्ठि—ये महा धनकुबेर श्रेष्ठि थे। ये सोपारपुर के रहने वाले थे। ये वज्रसेन सूरि के श्रावक उपस्थित थे।

२९३—धन्नाश्रेष्ठि—इनकी कथा सर्वाधिक सर्वत्र प्रसिद्ध है। ये भी बड़े धनाढ्य थे। इन्होंने सिद्ध-सिद्धि छोड़ दीक्षा ग्रहण की थी।

२९४—सुभद्रश्रेष्ठि—ये भी अतुल वैभव के स्वामी थे। इन्होंने भी सकल सिद्धि-सिद्धि को छोड़कर संयम व्रत ग्रहण किया था।

२९५—जगद्दूशाह—ये भद्रेश्वरपुर (कच्छ) के महाराजा

विशालदेव के समय उपस्थित थे। इन्होंने पंचवर्षीय दुष्काल में जो उस समय पड़ा था करोड़ों स्वर्ण-मुद्राओं का अन्न क्रय कर दानशालाएँ भोजनालय खोले थे और दीन, क्षुधित जनता का रक्षण किया था।

२९६—प्रतिक्रमण अर्थात् रात्रि में जाने, अनजाने मन, वचन और काया से किये गये, करवाये गये तथा अनुमोदित सावद्य कर्मों का प्रायश्चित्त, आलोचना प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में जाग कर सर्व जैन आबाल वृद्ध किया करते थे।

२९७—स्वाध्याय, पूजन, दान, संयम, तप एवं गुरु-भक्ति ये प्रत्येक श्रावक के दैनिक आवश्यक कर्त्तव्य थे।

२९८—वंदित्तु-सूत्र—इस सूत्र में ५० गाथा हैं। इन गाथाओं से कर्तव्याकर्तव्य का परिचय मिलता है।

२९९—सुदर्शन श्रेष्ठि—इनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

३००—शाकटायन—इनका भी वर्णन ऊपर हो चुका है।

३०१—त्रयगढ़—इसको समवशरण भी कहते हैं। समवशरण की रचना स्वयं देवतागण करते थे। देखो भगवान के बारह गुण और आठ प्रतिहार्य का उल्लेख।

३०२—आनंद—नं० २८८ देखिये।

३०३—चुल्लक—नं० २९१ देखिये।

३०४—नंदिनीप्रिय—ये बनारस के रहने वाले थे। भगवान महावीर के अनन्य भक्त थे। ये भी १२ करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं के [illegible] ४०००० गौओं के स्वामी थे।

[illegible] और [illegible] भगवान के [illegible] में से [illegible] बाहर निकाले

[illegible] इन सब की [illegible] स्थिति [illegible] की [illegible] है यहाँ इनका [illegible] इतिहास [illegible] का विचार था और इसी [illegible] में इन्हें [illegible] किया गया था। [illegible] कारण के [illegible] होने के कारण इस समय इनका परिचित इतिहास नहीं [illegible] हो सकता था [illegible] में इनका [illegible] किया जाता।

[illegible] पुनरुत्थान के [illegible] जैनाचार्यों के [illegible] में बड़ा [illegible] किया [illegible] पुनरुत्थान आचार्यों की [illegible] का बड़ा [illegible] किया था

[illegible] मुगल [illegible] में [illegible] [illegible] और [illegible] जैनाचार्यों का [illegible] किया [illegible] है इतिहास [illegible] है [illegible] [illegible] के [illegible] इतिहासकारों का [illegible] [illegible] मुसलमानों से [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]

अलग करने का निमंत्रण दिया था। इसी पापी के काले काम के कारण आज हिन्दुस्तान के दो बड़े खण्ड हो रहे हैं।

३२५-३२६—दिगंबर—दिक्+अंबर, दिशा ही जिनका वस्त्र है उन्हें दिगंबर कहते हैं।

श्वेतांबर—श्वेतवस्त्र पहिनने वालों को श्वेतांबर कहते हैं।

किसी समय जैनधर्म अखण्ड था। दुर्भाग्य से इसके ये नहीं दो खण्ड हो गये। कब हुए? यह प्रश्न विवादग्रस्त है। इस प्रश्न को छूने का यहाँ मेरा न विचार है और न इसको मैं यहाँ हल करना उचित समझता हूँ।

३२७-३२८—समय पाकर श्वेतांबर सम्प्रदाय के भी फिर दो दल हो गये। स्थानकवासी जो मूर्ति को नहीं मानते हैं और दूसरे मूर्तिपूजक जो मूर्ति की पूजा-प्रतिष्ठा करते हैं। स्थानकवासी सम्प्रदाय को ढूंढिया एवं ढूंढक भी कहते हैं। इस सम्प्रदाय को आदि करने वाले श्रीमान् लोकाशाह कहे जाते हैं। आगे जाकर रानेः रानेः मूर्तिपूजक सम्प्रदाय में भी आचार्यों के नाम के पीछे अलग अलग दल स्थापित होते गये और ये दल आज भी संख्या तक पहुँच गये, जो गच्छ कहलाते हैं। लोकाशाह के जितने ही जीवन-चरित्र छप चुके हैं। विस्तार के लिये उनमें से कोई देखें।

३२९—तेरापंथी—यह स्थानकवासी सम्प्रदाय में से निकला हुआ एक और पंथ है। इसकी आदि करने वाले भिखनजी कहे जाते हैं। भिखनजी स्थानकवासी साधु खुशालजी के शिष्य

३३०—नृपकलिङ्क—यह अवन्ती का राजा था। यह हिन्दू धर्म का कट्टर अनुयायी था। इसने जैन एवं बौद्धों के ऊपर अकथनीय अत्याचार किया था।

३३१—यह नंबर मूल से 'दुष्कृत्य' पर लग गया है।

३३२—पुष्यमित्र—यह शुंगवंश में आदि और प्रसिद्ध राजा हुआ है। यह विक्रम की द्वितीय शती में हुआ है। यह भी हिन्दू-धर्म का कट्टर पक्षपाती था। इसने मतद्वेष के कारण जैन राजाओं के प्रसिद्ध नगर पाटलीपुत्र को जला दिया था। इसने अपने देश में जैन साधुओं का आगमन रोक दिया था।

३३३—महात्मा गौतमबुद्ध—ये बौद्धधर्म के आदि प्रवर्तक माने जाते हैं। ये भगवान् महावीर के समकालीन थे। इन्होंने भी द्विजों की हिंसावृत्ति का प्रबल खण्डन किया था। आज बौद्धमत संसार के एक तिहाई भाग पर फैला हुआ है।

३३४ देखो नं० २

३३५ देखो नं० ३३२

३३६—औरंगजेब—यह बड़ा अत्याचारी मुगल सम्राट था। इसने जैन-धर्म के उत्सव, मेले, बरघोड़े रथ यात्राओं पर रोक लगा दी थी। कितने ही मन्दिर मस्जिद बनवा दिये गये थे।

३३७-३८—लार्ड-परिषद्—यह विलायत में एक सभा है। इसे अंग्रेजी में हाउस ऑफ लार्डस कहते हैं। भारतवासियों को अपने अभियोगों की, स्वत्वों की अंतिम प्रार्थना इस परिषद् के समक्ष करनी पड़ती है और इस परिषद् का किया हुआ न्याय सर्वोपरि एवं अंतिम होता है। इस श्वेताम्बर और दिगंबर सम्मेतशिखर के मुकदमे में लार्ड-परिषद् तक बढ़ चुके हैं।

जैन-जगती का शुद्धाशुद्ध पत्र

अतीत खण्ड

छंद	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१	वीण	वीन
१	२	ये स्वर, प्राण	निःस्वर, राग
१	३	हार	सार
१	४	मन ''सार दें	मन ''पूर्ण कर

वर्तमान खण्ड

१२५	३	श्वेतान्धर	श्वेतअम्बर
१७६	१	संगीत ज्ञाता	संगीत-ज्ञाता
१९३	४	कार	कर
२०७	४	आहित	हित
२२२	४	मात्र	मातृ
२३०	४	शोल	शील
३१८	३	वन	धन

३३०—नृपकलिंक—यह अवन्ती का राजा था। यह हिन्दू धर्म का कट्टर अनुयायी था। इसने जैन एवं बौद्धों के प्रति अकथनीय अत्याचार किया था।

३३१—यह नंबर मूल में 'दुष्कृत्य' पर लग गया है।

३३२—पुष्यमित्र—यह शुंगवंश में आदि और प्रसिद्ध राजा हुआ है। यह विक्रम की द्वितीय शती में हुआ है। यह भी हिन्दू धर्म का कट्टर पक्षपाती था। इसने मतद्वेष के कारण जैन राजाओं के प्रसिद्ध नगर पाटलीपुत्र को जला दिया था। इसने अपने देश में जैन साधुओं का आगमन रोक दिया था।

३३३—महात्मा गौतमबुद्ध—ये बौद्धधर्म के आदि प्रवर्तक माने जाते हैं। ये भगवान् महावीर के समकालीन थे। इन्होंने भी द्विजों की हिंसावृत्ति का प्रबल खण्डन किया था। आज बौद्धमत संसार के एक तिहाई भाग पर फैला हुआ है।

३३४ देखो नं० २

३३५ देखो नं० ३३२

३३६—औरंगजेब—यह बड़ा अत्याचारी मुगल सम्राट था। इसने जैन-धर्म के मन्दिर, मेले, तालाबों एवं यात्राओं पर रोक लगा दी थी। कितने ही मंदिर मस्जिद बनवा दिये गये थे।

३३७-३८—आर्य-परिषद्—यह विलायत में एक सभा है। इसे अंग्रेजी में हाउस ऑफ आर्ड्स कहते हैं। भारतवासियों को अपने अधिकारों की, स्वतंत्रता की अंतिम प्रार्थना इस परिषद् के समक्ष करनी पड़ती है और इस परिषद् का दिया हुआ निर्णय सर्वोपरि एवं अंतिम होता है। इस दरबार में और दिल्ली सम्राट के मुकदमे में आर्य-परिषद् तक जा चुके हैं।

जैन-जगत्‌ का शुद्धाशुद्ध पत्र

वर्तमान खण्ड

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१	[illegible]	[illegible]
१	२	[illegible]	[illegible]
१	३	[illegible]	[illegible]
१	४	[illegible]	[illegible]

वर्तमान खण्ड

१२५	३	[illegible]	[illegible]
१७१	१	[illegible]	[illegible]
१९३	४	[illegible]	[illegible]
२०७	४	[illegible]	[illegible]
२२१	४	[illegible]	[illegible]
२१०	४	[illegible]	[illegible]
२१८	३	[illegible]	[illegible]